

ISSN: 3049-2211



कृषक मंच

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-2 अंक- 5, मई- 2026



Krishakmanch.com



कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक

सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष

सब्जी विज्ञान विभाग

कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक

शोधार्थी

ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय

पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)

आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया

सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. रविशंकर

सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)

स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी

सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव

सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)

आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह

सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)

आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता

सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)

आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल

सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता

सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)

आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. कुमार अंशुमान

सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार

सहायक प्राध्यापक

लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)

इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. कल्याण सिंह

स्वतंत्र लेखक

बांदा कृ. एवं प्रौ. वि.वि., बांदा (उ.प्र.)।

डा. शिवशंकर पटेल

शोधार्थी

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	जून माह में किसान भाई क्या करें ?	4-5
2	मानव स्वास्थ्य, पानी की कमी और कम लागत को देखते हुए वैज्ञानिक तकनीक से फिंगर मिलेट की खेती ।	6-8
3	कृषि का स्त्रिकरण: भारतीय कृषि के बदलते स्वरूप और स्त्रीत्व का वैश्विक उदय ।	9-13
4	जलवायु परिवर्तन का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव ।	14-16
5	नारियल कोयर उद्योग: किसानों और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक सशक्त कदम ।	17-20
6	नाइट्रोजन स्थिरीकरण का जैव रसायन शास्त्र: नाइट्रोजिनेस और राइजोबियम की भूमिका ।	21-22
7	फार्मर रजिस्ट्री: भारतीय कृषि के डिजिटल कायाकल्प का आधार स्तंभ ।	23-26
8	बागवानी फसलों के उत्पादन में मल्लिचंग का महत्व ।	27-31
9	किसान बाबूलाल अहिरवार का मशरूम की खेती से सफलता का सफर ।	32-34
10	गुणवत्तायुक्त बीज का महत्व ।	35-36
11	बीजोपचार एक लाभ अनेक: बीजोपचार क्या है ,कैसे करेंगे एवं क्यों महत्वपूर्ण है?	37-38
12	सुपरफूड मखाना: सेहत और स्वाद का परफेक्ट कॉम्बिनेशन ।	39-40
13	दूध/ डेरी व्यवसाय से मूल्य संवर्धन के उपाय ।	41-44
14	विकसित भारत 2047 में कृषि मशीनीकरण की भूमिका ।	45-46
15	छोटे किसानों के लिए बेहतर बीज विकल्प: संकर बीज ।	47-49
16	कलौंजी की खेती शुरू कर किसान ने किया नवाचार ।	50-51
17	गर्मी की लहर से बचाव में सही वस्त्रों का चयन है जरूरी ।	52
18	गुणवत्ता पूर्ण बीजों का उपयोग और उनका कृषि विकास में योगदान ।	53-56
19	गेंदा लगाए आय बढ़ाएं ।	57-58
20	साहीवाल गायों में सहजन (Moringa oleifera) का महत्व: पोषण, दुग्ध उत्पादन एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव ।	59-62
21	सब्जियों के फसलों में नमी तनाव का प्रबंधन ।	63-64
22	पशु पोषण में औषधीय पौधों का महत्व: टिकाऊ एवं लाभकारी डेयरी विकास का आधार ।	65-69



जून माह में किसान भाई क्या करें ?

मुस्कान सिंह- बैचलर ऑफ साइंस इन एग्रीकल्चर, **अब्दुल शमद-** सहायक प्राध्यापक, उद्यान विभाग
सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रदीप कुमार- फल विज्ञान विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

रितु यादव- सस्य विज्ञान विभाग सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

जून का महीना खेती के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह खरीफ फसलों की तैयारी और बुवाई का समय होता है। इस समय मौसम में बदलाव, मानसून की शुरुआत और खेत की तैयारी जैसे कार्य किसान के लिए निर्णायक भूमिका निभाते हैं। यदि इस माह में सही प्रबंधन किया जाए, तो अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

1. खेत की तैयारी

जून में सबसे पहले खेत की अच्छी तरह जुताई करनी चाहिए। गहरी जुताई करने से मिट्टी में नमी संरक्षित रहती है और कीट व रोगों के अंडे नष्ट हो जाते हैं। खेत को समतल बनाना भी आवश्यक है ताकि पानी का सही प्रबंधन हो सके।

2. उर्द एवं मूंग

विलम्ब से बुआई की गयी जर्द व मूंग की फसल की कटाई जून के प्रथम पखवाड़े में कटाई कर महाई कर लें।

3. सुरजमुखी

मुण्डकों को भली-भाँति सुखाकर डण्डे की सहायता से दाना पीटकर अलग कर लें।

4. गन्ना

✓ शरदकालीन/ बसन्तकालीन की नौरख अथवा पैड़ी में अवश्यकतानुसार निराई-गुडाई एवं सिंचाई कर अवशेष नत्रजन की मात्रा कूड़ों में डाल दें।

- ✓ पाइरिला, काला कीट के लिए एसीटामप्रिड 200 ग्राम/एकड़ के दर से स्प्रे करें।
- ✓ अगोला बेधक एवं तना छेदक के लिए कार्बोफ्यूथ्रान 4 जी दानेदार दवा का 12.5 किलोग्राम प्रति एकड़ नमीयुक्त खेत में शाम के समय डालें।
- ✓ खड़ी गन्ने की फसल में 0:52:34 एन.पी.के. 1.5 किलोग्राम + जिंक सल्फेट 250 ग्राम व 1 किलोग्राम यूरिया घोल स्प्रे करें।
- 5. धान**
- ✓ मध्य व शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की नर्सरी प्रथम पखवाड़े व सुगन्धित धान की नर्सरी माह के दूसरे पखवाड़े में डालें।
- ✓ अच्छी नर्सरी उत्पादन हेतु खेत को तैयार कर लें। बीज को 24-36 घण्टे स्थिर पानी जिसमें फंफूदनाशी दवा 2 ग्राम/लीटर की दर घुली हो उपचारित करें, तत्पश्चात् बीज को निकालकर छायादार स्थान में पतली परत के रूप में बिछाकर।
- ✓ टाट पट्टी उक कर अंकुरित कर लें। उसके बाद नर्सरी के लिए तैयार खेत में शाम के समय छिडक कर बुआई कर दें। ध्यान रखे खेत में दिन के समय खेत में पानी नहीं रहना चाहिए।
- ✓ पौध जब 20-22 दिन की हो जाय उसकी रोपाई करें।



- ✓ खरपतवार प्रबन्धन हेतु 10-12 दिन पर विसपाइरेविक सोडियम 1 मिली/लीटर पानी घोल बनाकर स्प्रे कर दें।
 - ✓ सिंचित दशा में धान की सीधी बुआई करें। इसके लिए खेत का पलेवा करके नम और पर खेत को जोत कर तैयार कर लें। इसके बाद पैड़ी सीकर या जीरो टिल मशीन से बुआई करें।
 - ✓ खेत में 24 घंटे के अन्दर पेन्डामेथलीन दवा 1.33 लीटर दवा 200-250 लीटर पानी में स्प्रे करें।
 - ✓ खेत में 12-15 दिन पर पहला हल्का पानी लगाए।
 - ✓ ओट आने पर खरपतवारनाशी पेनोक्सुलम 1.02 प्रतिशत + साइहलोफॉफ ब्यूटाइल 5.1 प्रतिशत का 800 मिली प्रति एकड़ की दर 200-250 लीटर पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।
 - ✓ खेत में शोश कियाए रोपाई में की गयी धान के अनुसार करें।
- 6. अरहर**
- ✓ लम्बी अवधि वाली अरहर की प्रजातियों की बुआई मेड बनाकर कबार में करें।
 - ✓ अच्छी पैदावार के लिए बुआई के समय 50 किलों ग्राम डी.ए.पी.+ 25 किग्रा प्रति एकड़ अथवा 150 किग्रा सिंगल सुपर फास्फेट + 25 किग्रा यूरिया + 25 किग्रा म्यूरेट आफ पोटाश प्रति एकड़ प्रयोग करें।
 - ✓ बुआई के 20-25 दिन बाद पर खरपतवार प्रबन्धन हेतु इमिजाथाईपर 400 ग्राम प्रति एकड़ नमी की स्थिति में स्प्रे करें।
- 7. मक्का**
- ✓ खरीफ फसल का अच्छा उत्पादन हेतु बुआई प्रथम पखवाड़े में कर लें।
 - ✓ बुआई मेड विधि से करें और बीज को बीज उपचार उपरान्त प्रयोग करें।
 - ✓ बुआई 12-15 दिन सिंचाई करें। नमी आने की दशा में खरपतवारनाशी एट्राजिन 1 किग्रा या सिमेजिन 500 ग्राम का स्प्रे करें।

8. मूंगफली

- ✓ मूंगफली की बुआई जून के दूसरे पखवाड़े में करें।
- ✓ बीज अच्छी प्रजाति का प्रयोग करें एवं बीज शोधन, फफूदनाशी, कीटनाशी, राइजोबियम से करें।
- ✓ खरपतवार प्रबन्धन अरहर फसल के अनुसार करें।

9. बागवानी फसलों का प्रबंधन

आम, अमरूद, नींबू आदि फलदार पौधों में इस समय सिंचाई, खाद एवं कीट नियंत्रण का ध्यान रखें। नए पौधों का रोपण भी इस समय किया जा सकता है क्योंकि वर्षा का मौसम पौधों के विकास के लिए अनुकूल होता है।

10. वर्षा जल का संरक्षण

जून में मानसून की शुरुआत होती है, इसलिए वर्षा जल को संरक्षित करना बहुत जरूरी है। खेत में मेडबंदी, नालियां बनाना और तालाबों में पानी इकट्ठा करना उपयोगी होता है।

11. पशुपालन

- ✓ यदि पशुओं में अभी तक एफ.एम.जी, हेमोरेज सेप्टिसीमिया, ब्लेक क्वार्टर, एंटरोक्सिमिया आदि खिलाफ अवश्य टीका लगवा लें।
- ✓ पशुओं को कृमि मुक्का करने हेतु दवा खिलाएं।
- ✓ गर्मियों में उगाये गये ज्वार में कभी-कभी जहरीले तत्व होते हैं इसको कम करने के लिए वर्षा होने के बाद या खेत में पानी लगाने के उपरान्त खिलाएं।
- ✓ पशुओं को विटामिन तथा आवश्यक खनिज लवण युक्त पौष्टिक आहार दें।
- ✓ पशुओं को हरा चारा उपलब्ध न होने पर जहाँ आवश्यक हो उन्हें विटामिन ए के इंजेक्शन लगवाएं।



मानव स्वास्थ्य, पानी की कमी और कम लागत को देखते हुए वैज्ञानिक तकनीक से फिंगर मिलेट की खेती



1



2



3

¹अमर नाथ जायसवाल- पी.एच.डी. शोधार्थी, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

²नितिल कुमार श्रीवास्तव- पी.एच.डी. शोधार्थी, महाराजा सुहेलदेव विश्वविद्यालय आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

³डॉ. प्रभात कुमार चतुर्वेदी- विभागाध्यक्ष, सस्य विज्ञान, नेशनल पी. जी. कॉलेज, बरहलगांज, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

फिंगर मिलेट, अफ्रीकन फिंगर मिलेट, रेड मिलेट और रागी के नाम से जाना जाने वाला यह अनाज सबसे पुराना खाद्य पदार्थ है और घरेलू उपयोग के लिए इस्तेमाल होने वाला पहला अनाज है। फिंगर मिलेट मूल रूप से इथियोपिया के पहाड़ी क्षेत्रों का पौधा है और लगभग 4000 साल पहले भारत में लाया गया था। इसे शुष्क मौसम में उगाया जा सकता है; यह भीषण सूखे की स्थिति को सहन कर सकता है और अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उग जाता है। इसकी अवधि कम होती है, यह मात्र 65 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाता है और इसे पूरे वर्ष आसानी से उगाया जा सकता है। यह सभी छोटे बाजरो में सबसे अधिक उगाई जाने वाली फसल है। रागी एक अत्यंत पौष्टिक और ग्लूटेन-मुक्त प्राचीन अनाज है। यह सूक्ष्म पोषक तत्वों का भंडार माना जाता है और

सभी अनाजों में सबसे अधिक कैल्शियम की मात्रा के लिए प्रसिद्ध है। यह हड्डियों के स्वास्थ्य, रक्त निर्माण और निरंतर ऊर्जा के लिए अत्यंत लाभकारी है। अन्य सभी अनाजों और बाजरो की तुलना में यह प्रोटीन और खनिजों का समृद्ध स्रोत है। इसमें महत्वपूर्ण अमीनो एसिड पाए जाते हैं। इसमें कच्चे रागी के प्रति 100 ग्राम में आमतौर पर निम्नलिखित पोषक तत्व शामिल होते हैं: कैलोरी: लगभग 320-350 किलो कैलोरी, कार्बोहाइड्रेट: 65-75 ग्राम, फाइबर: 11-15 ग्राम, प्रोटीन: 5-8 ग्राम, वसा: 1-2 ग्राम, कैल्शियम (344 मिलीग्राम) और पोटेशियम (408 मिलीग्राम) की मात्रा सबसे अधिक होती है। यह कम हीमोग्लोबिन स्तर वाले व्यक्तियों के लिए फायदेमंद है क्योंकि यह आयरन का एक अच्छा स्रोत है।



जलवायु

उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में अच्छी तरह उगती है। तापमान- 24-34°C, बुवाई का तापमान - 30-34°C,

मृदा का चुनाव

इसे उपजाऊ दोमट मिट्टी से लेकर उपजाऊ, कम उपजाऊ और कम उपजाऊ ऊपरी मिट्टी तक, विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है। अच्छी जल निकासी वाली काली मिट्टी में भी इसकी खेती की जा सकती है, क्योंकि यह फसल कुछ हद तक जलभराव को सहन कर सकती है। रागी की सबसे अच्छी बड़वार 4.5-8 पीएच वाली मिट्टी में होती है। जलभराव की समस्या वाली मिट्टी में रागी की खेती नहीं करनी चाहिए।

भूमि की तैयारी

खेत का 2-3 बार गहरी जुताई करें। बुवाई से पहले चिकनी बीज क्यारी तैयार करने के लिए कल्टीवेटर और बहुदांत वाले कुदाल से द्वितीयक जुताई आवश्यक है। बुवाई से पहले थोड़ी-बहुत मिट्टी समतल करें, इससे मिट्टी में नमी बेहतर तरीके से संरक्षित रहती है।

सबसे लोकप्रिय किस्म

वीएल मंडुआ 101, वीएल मंडुआ 204, वीएल 124, वीएल 149, वीएल 146, वीएल मंडुआ 315 (105-115 दिनों में पकने वाली) और वीएल मंडुआ 324 (105-135 दिनों में पकने वाली)। पहाड़ी क्षेत्रों के लिए केएम-65 और पीईएस 176।

पीईएस 400: 98-102 दिनों में कटाई के लिए तैयार। इससे प्रति एकड़ औसतन 8 क्विंटल उपज मिलती है। यह जल्दी पकने वाली किस्म है और ब्लास्ट रोग प्रतिरोधी है।

पीईएस 176: 102-105 दिनों में कटाई के लिए तैयार। इससे प्रति एकड़ औसतन 8-9 क्विंटल उपज मिलती है। इसके बीज भूरे रंग के होते हैं और यह ब्लास्ट रोग प्रतिरोधी है।

केएम-65: 98-102 दिनों में कटाई के लिए तैयार। इससे प्रति एकड़ औसतन 8-10 क्विंटल उपज मिलती है।

VL 315: 105-115 दिनों में कटाई के लिए तैयार। इससे प्रति एकड़ औसतन 10-11 क्विंटल उपज प्राप्त होती है। यह किस्म फिंगर और नेक ब्लास्ट रोग के प्रति सहनशील है।

VL146: 95-100 दिनों में कटाई के लिए तैयार। इससे प्रति एकड़ औसतन 98-102 क्विंटल उपज प्राप्त होती है। यह किस्म ब्लास्ट रोग के प्रति प्रतिरोधी है।

VL 149: 98-102 दिनों में कटाई के लिए तैयार। इससे प्रति एकड़ औसतन 10-11 क्विंटल उपज प्राप्त होती है। यह किस्म व्यापक

अनुकूलन क्षमता वाली, जल्दी पकने वाली और ब्लास्ट रोग के प्रति प्रतिरोधी है।

VL 124: 95-100 दिनों में कटाई के लिए तैयार। औसत उपज 10 क्विंटल प्रति एकड़। यह बीज और चारे दोनों के लिए उपयुक्त है।

बुवाई का समय- जून - जुलाई

बीज दर

छिटकवा से - 12-15 kg/ha

लाइन से लाइन - 10 - 12kg /ha

ट्रांसप्लानटींग से -4 -5kg/ha

फासला - 22.5-30cm x 10-15 cm

बुवाई की गहराई - 3 - 4 cm

बीज उपचार - थिरम 4 gm/kg, carbandazim- 2gm/kgसीड

सिचाई- 5 से 8 सिचाई कम से कम

खाद और उर्वरक-

5-12.5 टन गोबर की खाद। वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए उर्वरक N.P.K ratio- 40:20:20(कि.ग्रा./हेक्टेयर)। सिंचित क्षेत्रों के लिए N.P.K ratio 60:30:30 (कि.ग्रा./हेक्टेयर)।

खरपतवार नियंत्रण

फसल की प्रारंभिक अवस्था में, अच्छी उपज के साथ-साथ फसल की अच्छी वृद्धि के लिए खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। पंक्तिबद्ध बुवाई में 2-3 बार अंतर-कलशीकरण और एक बार हाथ से निराई करना आवश्यक है।

प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए ऑक्सीफ्लोरफेन (1.25 किलोग्राम/एकड़) या आइसोप्रोटूरॉन (400 ग्राम/एकड़) जैसे पूर्व-उद्भव खरपतवारनाशक का छिड़काव करें। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए बुवाई के लगभग 20-25 दिन बाद 2-4-डी सोडियम नमक (250 ग्राम/एकड़) का छिड़काव करें।

रोग और कीट नियंत्रण

1. ब्लास्ट (पाइरिकुलारिया ग्रिसिया)-

लक्षण: यह रोग विकास के सभी चरणों को प्रभावित करता है। इससे पत्तियों पर धूसर केंद्र वाले धुरी के आकार के घाव (पत्ती झुलसा रोग), तनों का काला पड़ना और टूटना (गांठ झुलसा रोग), और बाली के नीचे गर्दन का काला पड़ना और टूटना (गर्दन झुलसा रोग) होता है।

प्रबंधन: रोग प्रतिरोधी किस्मों के पौधे लगाएं और बीजों को फफूंदनाशक से उपचारित करें। पत्तियों और गर्दन के संक्रमण को नियंत्रित करने के लिए कार्बेन्डाजिम (0.1%) या मैनकोजेब का छिड़काव करें।



2. डाउनी मिल्ड्यू (स्क्लेरोस्पोरा ग्रामिनिकोला)

लक्षण: इससे निचली पत्तियों में पीलापन (क्लोरोसिस) आ जाता है जो धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ता है। पत्तियों के निचले भाग पर सफेद से भूरे रंग की रोएँदार फफूंद जैसी वृद्धि दिखाई देती है।

प्रबंधन: फसल चक्र अपनाएं, फसल के अवशेष हटा दें और जलभराव वाले या अत्यधिक नमी वाले खेतों में बुवाई से बचें।

3. भूरा धब्बा (हेल्मिन्थोस्पोरियम नोडुलोसम या बाइपोलारिस एसपीपी.)

लक्षण: युवा पत्तियों पर छोटे, भूरे रंग के अंडाकार घाव जो मिलकर बड़े झुलसे हुए धब्बे बन जाते हैं।

प्रबंधन: स्वच्छ बीजों का प्रयोग करें, खेत की स्वच्छता बनाए रखें और फफूंदनाशक के पहले लक्षण दिखाई देने पर ही उसका छिड़काव करें।

4. जीवाणु पत्ती झुलसा रोग (जैथोमोनस एक्सोनोपोडिस)

लक्षण: पत्तियों पर पारदर्शी, पानी से भीगी हुई धारियाँ दिखाई देती हैं जो बाद में पीले या गहरे हरे-भूरे धब्बों में बदल जाती हैं। गंभीर मामलों में, पत्तियाँ मुरझा जाती हैं और पौधे सूख जाते हैं।

प्रबंधन: प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करें और अत्यधिक नाइट्रोजन उर्वरक से बचें जो घनी, संवेदनशील वनस्पति वृद्धि को बढ़ावा देता है।

कीट –

1. आर्मीवर्म और कटवर्म: फसल की प्रारंभिक अवस्था में दिखाई देते हैं। इनके लार्वा फसल की प्रारंभिक अवस्था में पौधे के आधार को काटते हैं। ये रात में सक्रिय रहते हैं और दिन के समय दरारों और पत्थरों के नीचे छिप जाते हैं। इनका चक्रीय स्वभाव होता है।

नियंत्रण: कटवर्म के अंडों को नियंत्रित करने के लिए, ट्राइकोग्रामा पैरासिटॉइड को सप्ताह में एक बार लगातार 3 सप्ताह तक डालें। लक्षण दिखने पर मैलाथियन 5% @ 10 कि.ग्रा./एकड़ या क्विनालफोस 1.5% @ 250 मिली/एकड़ का छिड़काव करें। फसल कटाई के बाद खरपतवार और टूट हटा दें।

2. एफिड: ये पूरे वृद्धि काल के दौरान पाए जाते हैं। ये पत्तियों के मध्य भाग और बालियों पर देखे जाते हैं। एफिड के संक्रमण की स्थिति में पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। एफिड के निम्फ गोल आकार के और लाल-भूरे रंग के होते हैं। वयस्क पीले रंग के होते हैं और उनके पैर हरे रंग के होते हैं।

नियंत्रण: यदि कीटों का प्रकोप दिखाई दे तो उसे नियंत्रित करने के लिए मिथाइल डेमेटोन 25ईसी @ 80 मिली/एकड़ या डाइमेटोएट 30ईसी @ 200 मिली/एकड़ का छिड़काव 100 लीटर पानी में मिलाकर करें।

3. सफेद तना छेदक- इसके लार्वा तने के निचले हिस्से में पाए जाते हैं और क्षति पहुंचाते हैं। ये जड़ों को खाते हैं और गंभीर संक्रमण की स्थिति में, बीच की शाखाएँ सूखकर पीली पड़ जाती हैं। लार्वा दूधिया सफेद रंग का होता है और इसका सिर पीला होता है, जबकि वयस्क कीट गहरे भूरे रंग के होते हैं और उनके अगले पंख सफेद रंग के होते हैं।

नियंत्रण: यदि कीटों का प्रकोप दिखाई दे, तो कैराबैरिल 50WP @ 1 कि.ग्रा./एकड़ या डाइमेटोएट 30 EC @ 200 मिलीलीटर को 100 लीटर पानी में घोलकर स्प्रे करें।

4. कान का कीड़ा- वयस्क कीट फसल पर दूधिया अवस्था में हमला करते हैं। ये उभरते हुए पुष्पगुच्छ को खाते हैं और रेशमी जाले वाले भूसीनुमा दाने पैदा करते हैं। अंडे चमकदार सफेद रंग के होते हैं और नारंगी बालों के साथ गुच्छों में पाए जाते हैं। इल्लियाँ भूरे रंग की होती हैं जिन पर पीली पट्टी और छोटे-छोटे बाल होते हैं। वयस्क कीट भूरे रंग के होते हैं जिनके अगले पंख रेशेदार और पिछले पंख पीले रंग के होते हैं।

नियंत्रण: वयस्क पतंगों को आकर्षित करने के लिए दिन के समय प्रकाश जाल लगाएं। पुष्पन अवस्था से लेकर बाली अवस्था तक प्रति एकड़ 5 फेरोमोन जाल लगाएं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में, प्रति एकड़ 100 लीटर पानी में 400 मिलीलीटर मैलाथियन या 600 ग्राम कार्बैरिल का छिड़काव करें।

फसल कटाई

सामान्यतः फसल 120-135 दिनों में पक जाती है, हालांकि किस्म के आधार पर समय अवधि भिन्न हो सकती है। कटाई दो चरणों में की जाती है। बालियों को हंसिया से काटा जाता है और भूसे को जमीन के करीब से अलग किया जाता है। बालियों को ढेर लगाकर तीन से चार दिनों तक धूप में सुखाया जाता है। अच्छी तरह सूखने के बाद थ्रेसिंग की जाती है। कुछ स्थानों पर बाली सहित पूरे पौधे को काटकर, ढेर लगाकर दो-तीन दिनों तक धूप में सुखाया जाता है और फिर थ्रेसिंग की जाती है।

उपज

दाना – 15 से 25 q/ha

भूसा - 4 से 8q/ha

सह उत्पाद- रागी का प्रयोग शराब के कच्चे माल, बच्चों के भोजन, दूध गहरा बनाने के लिए और दूध वाली बिबरेज बनाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। देश के कुछ हिस्सों में उबालु ड्रिंक या बियर भी इसी से तैयार की जाती है।





कृषि का स्त्रीकरण: भारतीय कृषि के बदलते स्वरूप और स्त्रीत्व का वैश्विक उदय

डा० ज्योति मीणा- सहायक प्राध्यापक, सूरत सिंह सखावत- शोध छात्र
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

भारतीय कृषि का परिदृश्य वर्तमान में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और संरचनात्मक रूपांतरण के दौर से गुजर रहा है, जिसे वैश्विक विद्वानों ने 'कृषि का स्त्रीकरण' के रूप में परिभाषित किया है। सामान्य अर्थों में, इस अवधारणा से तात्पर्य कृषि कार्यबल और संपूर्ण ग्रामीण आजीविका तंत्र को बनाए रखने में महिलाओं की निरंतर बढ़ती भागीदारी और उन पर बढ़ती निर्भरता से है। वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के उपरांत की अवधि में यह घटना न केवल जनसांख्यिकीय बदलावों को प्रतिबिंबित करती है, बल्कि यह ग्रामीण श्रम बाजार के संक्रमण और महिलाओं की बदलती सामाजिक-आर्थिक भूमिकाओं को भी गहराई से रेखांकित करती है। ऐतिहासिक रूप से भारत की आर्थिक रीढ़ मानी जाने वाली कृषि में महिलाओं की भूमिका सदैव महत्वपूर्ण रही है, किंतु वर्तमान समय में उनकी उपस्थिति एक प्राथमिक उत्पादक और प्रबंधक के रूप में उभरकर सामने आई है। सांख्यिकीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो कृषि और संबद्ध क्षेत्र भारत की ग्रामीण महिलाओं के लिए आजीविका का सबसे बड़ा स्रोत है, जहाँ लगभग 80 प्रतिशत आर्थिक रूप से सक्रिय महिलाएँ इसी क्षेत्र में संलग्न हैं। इनमें से लगभग 33 प्रतिशत महिलाएँ कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करती हैं और 48 प्रतिशत स्वयं नियोजित किसान के रूप में अपनी भूमिका निभा रही हैं। संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्ष

2026 को 'महिला किसान का अंतर्राष्ट्रीय वर्ष' घोषित करना इस बात का वैश्विक प्रमाण है कि कृषि क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका अब केवल सहायक श्रम तक सीमित नहीं रही, बल्कि वे वैश्विक खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास की अनिवार्य धुरी बन चुकी हैं। भारत के 'विकसित भारत @2047' के विजन में महिला-नेतृत्व वाले विकास को एक प्रमुख स्तंभ माना गया है, जहाँ कृषि क्षेत्र की ये महिलाएँ राष्ट्र की समृद्धि का आधार बनेंगी।

संकटजन्य अनुकूलन और पुरुष बाह्य-प्रवास के अंतर्निहित तंत्र

कृषि के इस स्त्रीकरण की प्रक्रिया के पीछे निहित प्रेरक कारकों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह बदलाव केवल स्वैच्छिक नहीं, बल्कि परिस्थितियों से उपजा एक 'संकटजन्य अनुकूलन' है। समकालीन विद्वानों और नीति विश्लेषकों का मत है कि इसे 'कृषि संकट का स्त्रीकरण' कहना अधिक न्यायसंगत होगा क्योंकि यह ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ते आर्थिक दबाव और कृषि की अनिश्चितता का प्रत्यक्ष परिणाम है। दक्षिण एशियाई संदर्भ में कृषि आय में निरंतर आती कमी, इनपुट आपूर्ति पर निजी कंपनियों का बढ़ता नियंत्रण, ऋणग्रस्तता का बढ़ता जाल और वैश्विक फसल बाजारों की अस्थिरता ने ग्रामीण परिवारों के लिए केवल खेती पर निर्भर रहना कठिन बना दिया है। इस बढ़ते आर्थिक संकट के



कारण छोटे और सीमांत किसान परिवारों के पुरुष सदस्य बेहतर आय और नियमित रोजगार की तलाश में शहरों या औद्योगिक केंद्रों की ओर बाह्य-प्रवास करने के लिए विवश हुए हैं। जब पुरुष सदस्य पलायन करते हैं, तो पारिवारिक जोत का पूरा कार्यभार और प्रबंधन ग्रामीण महिलाओं के कंधों पर आ जाता है, जो अब भूमि की तैयारी से लेकर विपणन तक की जटिल चुनौतियों का सामना अकेले कर रही हैं। यह प्रक्रिया मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में अधिक प्रभावी है जहाँ कृषि की लाभप्रदता में कमी आई है और जीवनयापन के लिए गैर-कृषि आय अनिवार्य हो गई है। इस प्रकार, पुरुष प्रवास के बाद महिलाएँ न केवल खेत संभालती हैं, बल्कि वे पारंपरिक खाद्य फसलों के संरक्षण और पारिवारिक खाद्य सुरक्षा की संरक्षक भी बन जाती हैं।

अदृश्य श्रम और 'समय की भयानक गरीबी' का संरचनात्मक अवरोध

कृषि क्षेत्र में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी के बावजूद उनकी आर्थिक दृश्यता और उनके श्रम को मिलने वाली मान्यता के बीच एक गहरी खाई विद्यमान है। ग्रामीण भारत में महिलाएँ अक्सर 'समय की भयानक गरीबी' का सामना करती हैं क्योंकि वे न केवल खेतों में कठिन शारीरिक श्रम करती हैं, बल्कि उन पर अवैतनिक घरेलू कार्यों का भी दोहरा बोझ होता है। 'टाइम यूज सर्वे' के आँकड़े दर्शाते हैं कि 15 से 59 वर्ष की आयु वर्ग की 41 प्रतिशत महिलाएँ अपने परिवार के सदस्यों की देखभाल और घरेलू प्रबंधन में संलग्न रहती हैं, जबकि इसी आयु वर्ग के पुरुषों में यह भागीदारी केवल 21.4 प्रतिशत है। महिलाएँ खेतों में बुवाई, निराई और फसल की कटाई जैसे श्रम-गहन कार्यों में पुरुषों से अधिक समय बिताती हैं, किंतु उनके इस श्रम को अक्सर 'सहायक कार्य' मानकर कमतर आँका जाता है। इस तिहरे बोझ- उत्पादन, प्रजनन और घरेलू देखभाल के कारण उनके स्वास्थ्य और पोषण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। विडंबना यह है कि सामाजिक मानदण्ड और पितृसत्तात्मक सोच महिलाओं को 'किसान' के बजाय केवल एक 'गृहिणी' के रूप में ही देखती है। यह पहचान का संकट उन्हें सरकारी योजनाओं, ऋण सुविधाओं और विस्तार सेवाओं के लाभ से वंचित रखता है। आधिकारिक जनगणना के आँकड़ों में भी महिलाओं को अक्सर 'मुख्य श्रमिक' के बजाय 'सीमांत श्रमिक' की श्रेणी में रखा जाता है, जिससे उनकी वास्तविक आर्थिक भूमिका राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा में अदृश्य रह जाती है।

संसाधन विहीनता और भूमि स्वामित्व का कानूनी संघर्ष

कृषि के स्त्रीकरण की राह में सबसे बड़ा संरचनात्मक अवरोध उत्पादक संसाधनों, विशेषकर कृषि भूमि पर स्वामित्व का अभाव है।

ग्रामीण भारत में भूमि केवल संपत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक सुरक्षा और बैंक ऋण प्राप्त करने का मुख्य आधार है। राजस्व आँकड़ों और कृषि जनगणना (2015-16) के अनुसार, केवल 13.87 प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं के पास अपनी कृषि भूमि का कानूनी स्वामित्व है। यद्यपि हिंदू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम 2005 ने महिलाओं को पैतृक संपत्ति में समान अधिकार प्रदान किए हैं, किंतु व्यवहार में सामाजिक दबाव, कानूनी जटिलताओं और जागरूकता की कमी के कारण वे आज भी इन अधिकारों से वंचित हैं। भूमि का पट्टा उनके नाम पर न होने के कारण बैंक उन्हें ऋण देने में संकोच करते हैं और वे किसान क्रेडिट कार्ड जैसी महत्वपूर्ण सुविधाओं का लाभ नहीं उठा पातीं। इसके अतिरिक्त, सिंचाई के साधनों, उन्नत बीजों और आधुनिक उर्वरकों तक उनकी पहुँच भी पुरुषों की तुलना में अत्यंत सीमित है। वैश्विक शोध यह सिद्ध करते हैं कि यदि महिलाओं को संसाधनों पर पुरुषों के समान अधिकार दिए जाएँ, तो कृषि उत्पादकता में 20 से 30 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है और वैश्विक स्तर पर भूखमरी को 12 से 17 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। विधवा महिला किसानों की स्थिति इस संदर्भ में और भी अधिक चिंताजनक है, जिन्हें संपत्ति के अधिकारों के लिए कड़े सामाजिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है।

वेतन विसंगति और श्रम बाजार में लैंगिक भेदभाव का अर्थशास्त्र

कृषि क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं को मिलने वाले पारिश्रमिक में व्याप्त लैंगिक अंतर एक अन्य गंभीर आर्थिक समस्या है। समान कार्य करने के बावजूद महिलाओं को पुरुषों की तुलना में 30 से 50 प्रतिशत तक कम मजदूरी दी जाती है। यह भेदभाव विशेष रूप से निजी कृषि क्षेत्रों में दिखाई देता है, जहाँ महिलाओं के कार्यों को 'कम कुशल' मानकर उनका मूल्यांकन कम किया जाता है। उदाहरण के लिए, बुवाई, निराई और फसल की कटाई जैसे श्रम-गहन कार्यों में महिलाओं की भूमिका प्रधान होती है, किंतु जुताई जैसे कार्यों को पुरुषों के लिए आरक्षित माना जाता है और उन्हें उच्च दर पर भुगतान किया जाता है। वेतन में यह असमानता महिलाओं की क्रय शक्ति को कम करती है और उन्हें निरंतर गरीबी के चक्र में बनाए रखती है। मुद्रास्फीति के इस दौर में वास्तविक कृषि वेतन स्थिर रहा है, जिसने महिला कृषि श्रमिकों की आर्थिक असुरक्षा को और बढ़ा दिया है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) जैसी योजनाओं ने समान वेतन सुनिश्चित करने की दिशा में सराहनीय प्रयास किए हैं, जहाँ महिलाओं की भागीदारी अब 58.1 प्रतिशत तक पहुँच गई है। किंतु निजी कृषि बाजार में अभी भी व्यापक सुधारों की आवश्यकता है ताकि महिलाओं के श्रम का उचित और न्यायसंगत मूल्य सुनिश्चित किया जा सके।



क्षेत्रीय विश्लेषण: राज्यों के स्तर पर कृषि कार्यबल का रूपांतरण

भारतीय कृषि में महिलाओं की भागीदारी के रुझान राज्यों के स्तर पर अत्यधिक विविधतापूर्ण और रोचक हैं। पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वे (PLFS) 2022-23 के आँकड़े दर्शाते हैं कि ग्रामीण महिला श्रम बल भागीदारी दर (FLPR) में राष्ट्रीय स्तर पर 24.6 प्रतिशत से 41.5 प्रतिशत तक की तीव्र वृद्धि हुई है। झारखंड में यह वृद्धि सर्वाधिक उल्लेखनीय रही है, जहाँ यह 12.5 प्रतिशत से बढ़कर लगभग 41.6 प्रतिशत तक पहुँच गई है, जो पशुपालन और स्वयं सहायता समूहों की सक्रियता का परिणाम है। बिहार जैसे राज्यों में, जहाँ ऐतिहासिक रूप से सामाजिक बाधाओं के कारण महिलाओं की भागीदारी अत्यंत कम रही है, वहाँ भी ग्रामीण FLPR में लगभग 6 गुना सुधार देखा गया है और यह 30 प्रतिशत तक पहुँच गई है। पूर्वोत्तर राज्यों में नागालैंड 71.1 प्रतिशत की भागीदारी दर के साथ अग्रणी है, जहाँ कृषि और संबद्ध गतिविधियाँ महिलाओं की आजीविका का मुख्य आधार हैं। इसके विपरीत, पंजाब और हरियाणा जैसे समृद्ध राज्यों में महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम बनी हुई है क्योंकि वहाँ कृषि का अत्यधिक मशीनीकरण हुआ है जिसने महिला श्रम को विस्थापित किया है। हिमाचल प्रदेश जैसे हिमालयी राज्यों में पारंपरिक बागवानी के कारण महिलाओं का प्रतिनिधित्व सदैव उच्च स्तर पर रहा है, जहाँ वर्तमान में यह 66 प्रतिशत तक पहुँच गया है। असम के ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 74 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ कृषि में संलग्न हैं, जो इस क्षेत्र की कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था को दर्शाती है।

उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश: सांख्यिकीय अंतर्दृष्टि और कार्य-विभाजन

उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश के विशिष्ट अध्ययन कृषि के स्त्रीकरण के सूक्ष्म पहलुओं को उजागर करते हैं। उत्तर प्रदेश में एनएसएसओ (NSSO) के आँकड़ों के अनुसार, महिलाओं की भागीदारी पशुपालन (72 प्रतिशत), रोपण (25.7 प्रतिशत) और फसल कटाई (24.6 प्रतिशत) में सर्वाधिक है, जबकि जुताई (5.2 प्रतिशत) में यह न्यूनतम है। यहाँ यह भी देखा गया है कि आयु के साथ भागीदारी बढ़ती है और 30 से 44 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं का योगदान सबसे अधिक (40.9 प्रतिशत) है। जातिगत आधार पर देखा जाए तो अनुसूचित जातियों और पिछड़ों वर्गों की महिलाओं की भागीदारी सामान्य वर्ग की तुलना में बहुत अधिक है, जो आर्थिक मजबूती को एक प्रमुख कारक सिद्ध करती है। आंध्र प्रदेश में महिला कृषि श्रमिकों की संख्या में 2001 से 2011 के बीच लगभग 233.2 प्रतिशत का भारी उछाल आया है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक रोजगार के अभाव और

बढ़ती भूमिहीनता को दर्शाता है। ये क्षेत्रीय आँकड़े सिद्ध करते हैं कि कृषि का स्त्रीकरण एक व्यापक घटना है जो स्थानीय सामाजिक ढाँचे और आर्थिक विवशता से अविभाज्य है।

आदिवासी महिला किसान: कृषक से मजदूर बनने का संकट

अनुसूचित जनजातियों (ST) की महिला किसानों की स्थिति में एक चिंताजनक और संकटपूर्ण प्रवृत्ति देखी गई है। वर्ष 2001 से 2011 के बीच आदिवासी महिला कृषकों (जो स्वयं की भूमि पर खेती करती हैं) की संख्या 41.2 प्रतिशत से घटकर 30.1 प्रतिशत रह गई है। इसके विपरीत, इसी अवधि में आदिवासी महिला कृषि मजदूरों का प्रतिशत 44.8 प्रतिशत से बढ़कर 53.1 प्रतिशत हो गया है। यह तीव्र संक्रमण बढ़ती भूमिहीनता, ऋणग्रस्तता और छोटे किसानों के विस्थापन का संकेत है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के कारण आदिवासी परिवारों की भूमि उनके हाथ से निकल रही है, जिससे महिलाएँ स्वतंत्र कृषक से बदलकर दिहाड़ी मजदूर बनने को मजबूर हैं। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और ओडिशा जैसे राज्यों में आज भी ST महिलाओं की कृषि पर निर्भरता 90 प्रतिशत के करीब है, जो उनकी अत्यधिक आर्थिक संवेदनशीलता को उजागर करती है। इस वर्ग की महिलाओं को न केवल संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ता है, बल्कि वे शिक्षा और तकनीकी कौशल के स्तर पर भी पिछड़ी हुई हैं, जिससे उनकी सौदेबाजी की शक्ति और भी कम हो जाती है।

जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संकट का लैंगिक आयाम

जलवायु परिवर्तन की वर्तमान चुनौतियों ने कृषि के स्त्रीकरण को एक नई और अधिक जटिल चुनौती की ओर धकेल दिया है। कृषि, जो पूरी तरह जलवायु-संवेदनशील संसाधनों पर निर्भर है, पर्यावरणीय बदलावों से सर्वाधिक प्रभावित होने वाला क्षेत्र है। चूँकि महिलाएँ अब कृषि कार्यबल का सबसे बड़ा हिस्सा हैं, इसलिए जलवायु परिवर्तन का सीधा प्रभाव उनकी आजीविका और पोषण पर पड़ता है। अनिश्चित मानसून, बढ़ता तापमान और जल संसाधनों की कमी महिलाओं के कार्यभार को अत्यधिक बढ़ा देती है क्योंकि उन्हें सिंचाई और पशुओं के लिए पानी की व्यवस्था हेतु अधिक श्रम करना पड़ता है। छोटे और सीमांत खेतों पर काम करने वाली महिलाएँ अक्सर उन आधुनिक तकनीकों से वंचित होती हैं जो जलवायु जोखिमों को कम कर सकें। शोध दर्शाते हैं कि जब जलवायु आपदा के कारण फसलें खराब होती हैं, तो पुरुष सदस्य पुनः काम की तलाश में प्रवास कर जाते हैं, जिससे पीछे छोटी महिलाएँ खाद्य असुरक्षा का सबसे पहले शिकार होती हैं। हालांकि, तेलंगाना जैसे शुष्क क्षेत्रों में महिलाओं ने पारंपरिक मोटे अनाजों (जैसे बाजरा और ज्वार) की खेती के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रति



असाधारण लचीलापन दिखाया है। इन महिलाओं ने यह सिद्ध किया है कि जैविक विविधता और स्वदेशी बीज बैंकों का संरक्षण ही जलवायु जोखिमों से निपटने का सबसे प्रभावी मार्ग है।

सामूहिक कृषि और सशक्तिकरण के सफल वैश्विक प्रतिमान

इन चुनौतियों के बीच सामूहिक खेती और महिला समूहों के माध्यम से सशक्तिकरण के कई सफल मॉडल उभरकर सामने आए हैं जो वैश्विक स्तर पर अनुकरणीय हैं। केरल का 'कुदुम्बश्री' कार्यक्रम इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ भूमिहीन महिलाओं ने समूहों में संगठित होकर परती पड़ी जमीनों को पट्टे पर लिया और उन्हें उत्पादक कृषि भूमि में बदल दिया। इस पहल ने न केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनाया, बल्कि उन्हें समाज में 'किसान' के रूप में एक नई पहचान भी प्रदान की। वर्तमान में केरल में 2.8 लाख से अधिक महिलाएँ हजारों संयुक्त देयता समूहों (JLGs) के माध्यम से जैविक खेती कर रही हैं। इसी प्रकार, तेलंगाना में 'डेक्कन डेवलपमेंट सोसाइटी' (DDS) ने दलित और वंचित वर्ग की महिलाओं को जैविक खेती के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाया है। ये महिलाएँ अब अपने सामुदायिक बीज बैंक संचालित कर रही हैं और जलवायु परिवर्तन के दौर में 'खाद्य संप्रभुता' का नेतृत्व कर रही हैं। महिला किसान उत्पादक संगठन (WFPOs) भी एक प्रभावी मंच के रूप में उभरे हैं, जो महिलाओं को सामूहिक रूप से इनपुट खरीदने और अपनी उपज को सीधे बाजार में बेहतर कीमतों पर बेचने की शक्ति प्रदान करते हैं।

नीतिगत मार्ग और डॉ. स्वामीनाथन आयोग की दूरदर्शी अनुशंसाएँ

कृषि के स्त्रीकरण को वास्तविक सशक्तिकरण में बदलने के लिए महान कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन ने 'राष्ट्रीय किसान आयोग' की अपनी रिपोर्ट में ऐतिहासिक अनुशंसाएँ की थीं। उन्होंने महिला किसानों के लिए 'अ न्यू डील फॉर वीमेन इन एग्रीकल्चर' का ऐतिहासिक प्रस्ताव दिया था। डॉ. स्वामीनाथन ने महिला किसानों को कानूनी मान्यता देने के लिए एक विशिष्ट 'महिला किसान अधिकार विधेयक' और उनके लिए ऋण, तकनीक व विस्तार सेवाओं तक समान पहुँच सुनिश्चित करने की पुरजोर वकालत की थी। वर्तमान में भारत सरकार की 'महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना' (MKSP) इसी दिशा में एक बड़ा कदम है, जिसका उद्देश्य महिला किसानों की उत्पादकता बढ़ाना और उनके लिए स्थायी आजीविका सृजित करना है। इसके तहत 4.62 करोड़ से अधिक महिला किसानों को कृषि-पारिस्थितिक प्रथाओं को अपनाने के लिए समर्थित किया गया है। इसके अतिरिक्त, 'नमो ड्रोन दीदी' जैसी आधुनिक पहल महिलाओं को कृषि में

उन्नत तकनीक और ड्रोन सेवाओं के माध्यम से नए आर्थिक अवसर प्रदान कर रही है।

तकनीकी नवाचार और 'ड्रजरी' को कम करने का महिला-अनुकूल दृष्टिकोण

कृषि में महिलाओं के बढ़ते बोझ और शारीरिक श्रम को कम करने के लिए मशीनीकरण को महिला-अनुकूल (Gender-sensitive) बनाना अनिवार्य है। वर्तमान में अधिकांश कृषि यंत्र पुरुषों की शारीरिक बनावट के अनुसार डिजाइन किए गए हैं, जिससे महिलाओं के लिए उन्हें संचालित करना कठिन और थकाऊ होता है। आईसीआर-सीआईडब्ल्यू (ICAR-CIWA) जैसे संस्थान अब महिलाओं के लिए अनुकूल उपकरण विकसित कर रहे हैं, जैसे कि हल्के वजन वाले स्प्रे पंप, धान रोपाई की मशीनें और छोटे निराई उपकरण। 'सब-मिशन ऑन एग्रीकल्चरल मैकेनाइजेशन' (SMAM) के तहत महिलाओं को इन आधुनिक यंत्रों की खरीद पर 50 प्रतिशत तक की विशेष सब्सिडी प्रदान की जा रही है। तकनीकी नवाचार केवल उपकरणों तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि डिजिटल साक्षरता को भी ग्रामीण महिलाओं तक पहुँचाना होगा। मोबाइल आधारित कृषि सलाह सेवाएँ और मौसम संबंधी भविष्यवाणियाँ सीधे महिला किसानों तक पहुँचाने से उनकी निर्णय लेने की क्षमता में क्रांतिकारी सुधार हो सकता है। यह तकनीकी समावेशन महिलाओं को केवल श्रमिक से एक 'स्मार्ट किसान' में बदलने की शक्ति रखता है।

कृषि विस्तार सेवाओं में महिलाओं का बढ़ता प्रतिनिधित्व

कृषि विस्तार सेवाओं (Extension Services) में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाना कृषि उत्पादकता के लिए निर्णायक है। 'एग्रीकल्चरल टेक्नोलॉजी मैनेजमेंट एजेंसी' (ATMA) के तहत महिला लाभार्थियों की संख्या में निरंतर वृद्धि देखी गई है। वर्तमान में 'कृषि सखी', 'पशु सखी' और 'मत्स्य सखी' जैसी सामुदायिक संसाधन महिलाएँ ग्रामीण स्तर पर ज्ञान और सूचना के प्रसार का मुख्य माध्यम बन चुकी हैं। जून 2025 तक, लगभग 3.50 लाख सामुदायिक संसाधन व्यक्तियों का एक मजबूत नेटवर्क तैयार किया गया है। यह संस्थागत सहयोग न केवल महिलाओं को तकनीकी रूप से सक्षम बना रहा है, बल्कि उन्हें ग्रामीण नेतृत्व के पदों पर भी आसीन कर रहा है। महिला-नेतृत्व वाले एफपीओ (FPOs) की वृद्धि और क्षमता निर्माण के प्रयास उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में अधिक सक्रिय रूप से संलग्न कर रहे हैं। विस्तार सेवाओं में महिलाओं की इस बढ़ती भागीदारी से सूचना का प्रवाह अधिक समावेशी और प्रभावी हुआ है।



डिजिटल साक्षरता और वित्तीय समावेशन का नया युग

ग्रामीण महिलाओं के लिए डिजिटल साक्षरता अब केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि विकास की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। 'डिजिटल इंडिया' अभियान और 'जन धन-आधार-मोबाइल' (JAM) ट्रिनिटी ने महिला किसानों के लिए वित्तीय समावेशन के नए द्वार खोले हैं। बैंकों द्वारा अब महिलाओं को बिना गारंटी के 2 लाख रुपये तक का ऋण प्रदान किया जा रहा है। किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) तक महिलाओं की पहुँच बढ़ाने के लिए विशेष जागरूकता अभियान चलाए जा रहे हैं। 'ई-नाम' (e-NAM) जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म महिला किसानों को बिचौलियों से मुक्त कर सीधे बाजार से जुड़ने और अपनी उपज का सही मूल्य प्राप्त करने में सक्षम बना रहे हैं। डिजिटल लेनदेन और वित्तीय सेवाओं की यह सुगमता महिलाओं की आर्थिक स्वायत्तता को बढ़ा रही है। इसके साथ ही, ओएनडीसी (ONDC) जैसे पारदर्शी प्लेटफॉर्म छोटे महिला समूहों को अपने उत्पादों को वैश्विक स्तर पर प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान कर रहे हैं।

विकसित भारत @2047: भविष्य की समावेशी कृषक पहचान

भविष्य की ओर देखते हुए, भारत को 'विकसित भारत @2047' के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कृषि के स्त्रीकरण को

नीतिगत मुख्यधारा में पूर्णतः समाहित करना होगा। इसके लिए तकनीकी नवाचारों को महिला-अनुकूल बनाना और डिजिटल साक्षरता को अंतिम ग्रामीण महिला तक पहुँचाना अनिवार्य है। नीतिगत स्तर पर भू-स्वामित्व को सरकारी लाभों की पात्रता से अलग करना एक क्रांतिकारी कदम हो सकता है, जिससे भूमिहीन काश्तकार महिलाएँ भी सीधे लाभ प्राप्त कर सकेंगी। ग्राम पंचायतों के माध्यम से 'सामुदायिक भूमि बैंक' का गठन और महिलाओं के लिए विशिष्ट 'कृषक पहचान पत्र' (Mahila Kisan ID Card) जारी करना उनकी सामाजिक और आर्थिक दृश्यता को सुनिश्चित करेगा। यह पहचान पत्र उन्हें बैंकों से स्वतंत्र ऋण प्राप्त करने और सरकारी योजनाओं का लाभ बिना किसी पुरुष मध्यस्थ के उठाने में सक्षम बनाएगा। अंततः, कृषि का स्त्रीकरण केवल एक जनसांख्यिकीय घटना नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्जागरण है जो भारतीय गाँवों की तस्वीर बदलने की शक्ति रखता है। यदि हम महिला किसानों को संसाधनों, अधिकारों और सम्मान के साथ सशक्त करते हैं, तो वे न केवल कृषि को लाभदायक बनाएंगी बल्कि भविष्य के आत्मनिर्भर भारत की आधारशिला भी रखेंगी।



जलवायु परिवर्तन का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

मयंक कुमार*- पीएच.डी. शोध छात्र, डॉ. अनिल कुमार सिंह- एसोसिएट प्रोफेसर
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग
चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उ० प्र०)

मृदा (Soil) पृथ्वी पर जीवन का आधार है। कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा, जैव विविधता तथा पर्यावरणीय संतुलन सीधे रूप से मृदा स्वास्थ्य पर निर्भर करते हैं। स्वस्थ मृदा पौधों को आवश्यक पोषक तत्व, जल तथा सहारा प्रदान करती है। परंतु वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन (Climate Change) विश्व के सामने एक गंभीर चुनौती बनकर उभरा है, जिसका सीधा प्रभाव मृदा स्वास्थ्य पर पड़ रहा है।

औद्योगिकीकरण, वनों की कटाई, जीवाश्म ईंधनों का अत्यधिक उपयोग तथा बढ़ती जनसंख्या के कारण वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों की मात्रा बढ़ रही है। इसके परिणामस्वरूप वैश्विक तापमान में वृद्धि, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा चरम मौसमी घटनाएँ बढ़ रही हैं। ये सभी परिवर्तन मृदा की संरचना, उर्वरता, जैविक पदार्थ तथा सूक्ष्मजीवों को प्रभावित करते हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है क्योंकि देश की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है। यदि जलवायु परिवर्तन के कारण मृदा की गुणवत्ता प्रभावित होती है, तो इसका सीधा प्रभाव कृषि उत्पादन और खाद्य सुरक्षा पर पड़ेगा।

मृदा स्वास्थ्य का अर्थ

मृदा स्वास्थ्य से आशय मृदा की उस क्षमता से है जिसके द्वारा वह पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करती है तथा

पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखती है। स्वस्थ मृदा में निम्न गुण पाए जाते हैं—

- पर्याप्त पोषक तत्वों की उपलब्धता
- उचित जल धारण क्षमता
- संतुलित pH स्तर
- पर्याप्त जैविक पदार्थ
- सूक्ष्मजीवों की सक्रियता
- अच्छी संरचना एवं वायु संचार



जब जलवायु परिवर्तन इन गुणों को प्रभावित करता है, तब मृदा की उत्पादकता घटने लगती है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख कारण

जलवायु परिवर्तन मुख्यतः मानवीय गतिविधियों के कारण हो रहा है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

- 1. ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन-** कार्बन डाइऑक्साइड (CO₂), मीथेन (CH₄) तथा नाइट्रस ऑक्साइड (N₂O) जैसी गैसों वातावरण में तापमान बढ़ाती हैं।
- 2. वनों की कटाई-** पेड़ कार्बन अवशोषित करते हैं। वनों की कटाई से वातावरण में CO₂ की मात्रा बढ़ती है।
- 3. औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण-** कारखानों और वाहनों से निकलने वाला धुआँ जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा देता है।
- 4. रासायनिक कृषि-** रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग मृदा और पर्यावरण दोनों को प्रभावित करता है।

जलवायु परिवर्तन का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

1. मृदा नमी में कमी- वैश्विक तापमान बढ़ने से वाष्पीकरण की दर बढ़ जाती है, जिसके कारण मिट्टी की नमी तेजी से कम होती है। सूखे की स्थिति में फसलों को पर्याप्त जल नहीं मिल पाता और कृषि उत्पादन प्रभावित होता है।

प्रभाव: पौधों की वृद्धि रुक जाती है, मिट्टी कठोर हो जाती है, सूक्ष्मजीवों की सक्रियता कम हो जाती है, फसल उत्पादन घटता है।

2. मृदा अपरदन (Soil Erosion) में वृद्धि - अत्यधिक वर्षा, बाढ़ तथा तेज हवाएँ मिट्टी के ऊपरी उपजाऊ भाग को बहा ले जाती हैं। इसे मृदा अपरदन कहते हैं।

प्रभाव: उपजाऊ मिट्टी का नुकसान, पोषक तत्वों की कमी, कृषि भूमि की उत्पादकता में गिरावट, नदियों और जलाशयों में गाद जमना, भारत के पर्वतीय क्षेत्रों और शुष्क क्षेत्रों में यह समस्या तेजी से बढ़ रही है।

3. मृदा जैविक पदार्थ में कमी- मृदा में उपस्थित जैविक पदार्थ (Organic Matter) मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तापमान वृद्धि के कारण जैविक पदार्थ तेजी से विघटित होने लगते हैं।

प्रभाव: मिट्टी की जल धारण क्षमता कम होती है, पोषक तत्वों की उपलब्धता घटती है, कार्बन भंडारण क्षमता कम होती है।

4. मृदा सूक्ष्मजीवों पर प्रभाव- मृदा में अनेक प्रकार के लाभकारी सूक्ष्मजीव पाए जाते हैं जो पोषक तत्वों के चक्रण में सहायता करते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान और नमी में बदलाव से इन सूक्ष्मजीवों की संख्या और सक्रियता प्रभावित होती है।

प्रभाव: नाइट्रोजन स्थिरीकरण कम होता है, जैविक अपघटन प्रभावित होता है, मिट्टी की उर्वरता घटती है।

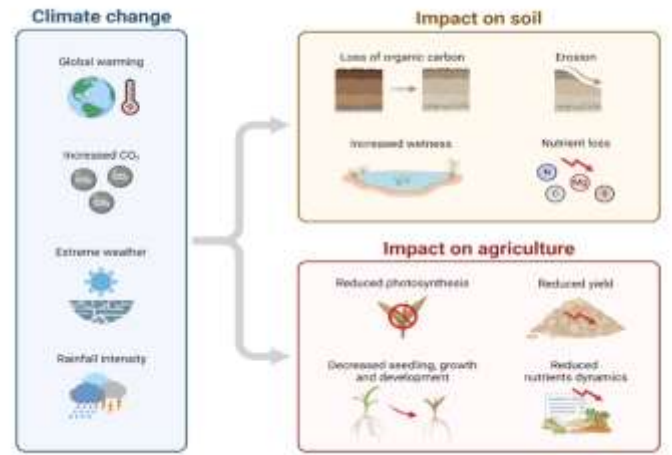
5. मृदा लवणता (Soil Salinity) में वृद्धि- तटीय क्षेत्रों में समुद्र स्तर बढ़ने से खारे पानी का प्रवेश कृषि भूमि में होने लगता है। इससे मिट्टी में लवणता बढ़ती है।

प्रभाव: फसलों की वृद्धि प्रभावित, मिट्टी की संरचना खराब, कृषि योग्य भूमि में कमी।

6. पोषक तत्वों का असंतुलन- अनियमित वर्षा और बाढ़ के कारण मिट्टी से नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटैश जैसे पोषक तत्व बह जाते हैं।

प्रभाव: पौधों में पोषण की कमी, उर्वरकों पर निर्भरता बढ़ना, कृषि लागत में वृद्धि।

7. मरुस्थलीकरण (Desertification)- सूखा और अत्यधिक तापमान के कारण भूमि बंजर बनने लगती है। इसे मरुस्थलीकरण कहते हैं।



भारत में स्थिति- राजस्थान, गुजरात और हरियाणा के कुछ क्षेत्रों में यह समस्या गंभीर होती जा रही है।

कृषि उत्पादन पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन के कारण मृदा स्वास्थ्य बिगड़ने से कृषि उत्पादन पर गंभीर प्रभाव पड़ता है।

प्रमुख प्रभाव: फसल उत्पादन में कमी, खाद्य गुणवत्ता में गिरावट, किसानों की आय में कमी, खाद्य सुरक्षा पर खतरा, कृषि लागत में वृद्धि गेहूँ, धान, मक्का तथा दालों जैसी प्रमुख फसलों जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही हैं।

पर्यावरणीय प्रभाव: मृदा स्वास्थ्य खराब होने से पर्यावरणीय संतुलन भी प्रभावित होता है।

कार्बन उत्सर्जन में वृद्धि, जैव विविधता में कमी, जल प्रदूषण, भूजल स्तर में गिरावट, प्राकृतिक आपदाओं की तीव्रता बढ़ना।



मृदा संरक्षण एवं समाधान

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के लिए मृदा संरक्षण अत्यंत आवश्यक है।

1. जैविक खेती को बढ़ावा - रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद, कम्पोस्ट और हरी खाद का उपयोग करना चाहिए।
लाभ: मृदा जैविक पदार्थ बढ़ते हैं, सूक्ष्मजीव सक्रिय रहते हैं, मृदा संरचना सुधरती है।



2. वृक्षारोपण- पेड़ मिट्टी को कटाव से बचाते हैं तथा कार्बन अवशोषित करते हैं।

3. फसल चक्र (Crop Rotation) - विभिन्न फसलों का क्रमवार उत्पादन मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने में सहायक होता है।

4. जल संरक्षण तकनीकें - ड्रिप सिंचाई, वर्षा जल संचयन, मल्लिचंगा इन तकनीकों से मिट्टी की नमी संरक्षित रहती है।

5. संरक्षण कृषि (Conservation Agriculture)- इसमें न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष संरक्षण तथा मिश्रित खेती को अपनाया जाता है।

6. मृदा परीक्षण एवं संतुलित उर्वरक उपयोग- मिट्टी की जांच के आधार पर उर्वरकों का उपयोग करना चाहिए।

7. सरकारी योजनाएँ- भारत सरकार द्वारा कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं- मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन आदि। इन योजनाओं का उद्देश्य मृदा स्वास्थ्य और कृषि उत्पादकता में सुधार करना है।

भारत में वर्तमान स्थिति

भारत में जलवायु परिवर्तन का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। अनियमित मानसून, बढ़ता तापमान तथा बार-बार आने वाली प्राकृतिक आपदाएँ कृषि क्षेत्र को प्रभावित कर रही हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा अन्य संस्थाएँ मृदा संरक्षण और जलवायु अनुकूल कृषि तकनीकों पर कार्य कर रही हैं। किसानों को जागरूक करना तथा आधुनिक तकनीकों का प्रसार वर्तमान समय की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन मृदा स्वास्थ्य के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है। तापमान वृद्धि, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ़ तथा मृदा अपरदन जैसी समस्याएँ मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता को लगातार प्रभावित कर रही हैं। यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो भविष्य में खाद्य सुरक्षा और पर्यावरणीय संतुलन दोनों खतरे में पड़ सकते हैं। मृदा संरक्षण, जैविक खेती, जल संरक्षण तथा सतत कृषि पद्धतियों को अपनाकर इन समस्याओं को काफी हद तक कम किया जा सकता है। सरकार, वैज्ञानिकों और किसानों को मिलकर कार्य करना होगा ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए स्वस्थ मृदा और सुरक्षित पर्यावरण सुनिश्चित किया जा सके।

अतः यह कहा जा सकता है कि “स्वस्थ मृदा ही स्वस्थ जीवन और समृद्ध भविष्य की आधारशिला है।”





नारियल कोयर उद्योग:

किसानों और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में एक सशक्त कदम

लेफ्ट. डॉ० सिम्पल जैन- आस्पी पोषण और सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, सरदारकृष्णनगर दांतीवाड़ा कृषि यूनिवर्सिटी, सरदारकृष्णनगर (गुजरात)
डॉ. डॉली मोगरा- सहायक प्राध्यापक, फैशन टेक्नोलॉजी एवं डिजाइन विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारत अनेक आस्थाओं, परंपराओं और संस्कृतियों का संगम है। यहाँ सदियों से पूजा-अर्चना और आध्यात्मिक शांति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इन सभी धार्मिक क्रियाओं में एक ऐसी वस्तु है जिसके बिना कोई भी पूजा अधूरी मानी जाती है—वह है नारियल। चाहे वह हिन्दू पूजा हो, त्योहार, विवाह समारोह, क्षेत्रीय रीति-रिवाज, शुभ अवसर, गृह प्रवेश या जन्म संस्कार लगभग हर धार्मिक और सामाजिक आयोजन में नारियल को सबसे पवित्र और श्रेष्ठ अर्पण के रूप में उपयोग किया जाता है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है और पूजा में अनिवार्य रूप से शामिल होता है। इसे कलश (जल से भरा हुआ पवित्र पात्र) पर स्थापित किया जाता है तथा पूजा वेदी पर विशेष स्थान दिया जाता है। मंदिरों में अर्चना थाल (पूजा सामग्री की थाली) में भी नारियल का प्रमुख स्थान होता है। नारियल को 'श्रीफल' अर्थात् ईश्वर का फल भी कहा जाता है। नारियल का महत्व इस तथ्य में निहित है कि यह ईश्वर की सृष्टि का प्रतीक माना जाता है। नारियल पर बने तीन चिह्न भगवान शिव की तीन आँखों के प्रतीक माने जाते हैं। यह एक सात्विक फल है, जो पवित्र, स्वास्थ्यवर्धक, शुद्ध और अनेक गुणों से युक्त है। इसी कारण इसकी धार्मिक महत्ता इतनी अधिक है कि इसके बिना कोई भी अनुष्ठान पूर्ण नहीं माना जाता।

यदि भारत में नारियल उत्पादन की बात करें, तो यह काफी उच्च स्तर पर होता है और विभिन्न गुणवत्ता स्तरों में उपलब्ध है।

नारियल वृक्ष मुख्यतः उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाए जाते हैं, जहाँ इसके बीज (खोपरा) में तेल की मात्रा अधिक होती है। इस तेल का उपयोग खाद्य और गैर-खाद्य उद्योगों (जैसे साबुन) में व्यापक रूप से किया जाता है। एशिया के फिलीपींस, इंडोनेशिया, भारत, और श्रीलंका जैसे देशों के तटीय क्षेत्रों में इसका बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा नारियल उत्पादक देश है, जो वैश्विक नारियल उत्पादन में 30.37% का योगदान देता है। वैश्विक स्तर पर नारियल की खेती लगभग 12,390 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में की जाती है, जिसमें भारत का हिस्सा लगभग 2,165.20 हजार हेक्टेयर है। देश में प्रतिवर्ष लगभग 21,373.62 मिलियन नारियल का उत्पादन होता है। इसकी औसत उत्पादकता लगभग 9,871 नारियल प्रति हेक्टेयर है, जो देश के कृषि उत्पादन में इस फसल के महत्वपूर्ण योगदान को दर्शाती है। लगभग 3 करोड़ लोग, जिनमें करीब 1 करोड़ किसान शामिल हैं, अपनी आजीविका के लिए नारियल पर निर्भर हैं। भारत में तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश नारियल के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

भारत के मंदिर पवित्रता और आध्यात्मिकता के केंद्र हैं। किसी भी पूजा में नारियल को फोड़ना अहंकार के त्याग का प्रतीक माना जाता है, जिससे व्यक्ति अपने आंतरिक स्वरूप के निकट आता है। धार्मिक उपयोग के अतिरिक्त, नारियल का आहार और सौंदर्य के क्षेत्र में भी



व्यापक उपयोग है। यह विभिन्न व्यंजनों जैसे नारियल चटनी, नारियल पानी, मिठाइयाँ, चॉकलेट, करी आदि में प्रयोग किया जाता है। दक्षिण भारत में यह एक प्रमुख खाद्य सामग्री है और नारियल तेल का उपयोग खाना बनाने में व्यापक रूप से किया जाता है। नारियल तेल स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होने के साथ-साथ एक उत्कृष्ट एंटीसेप्टिक भी है। त्वचा और बालों के लिए इसके अनेक लाभ हैं। नारियल के उपयोग के उपरान्त उसके बाहरी रेशेदार भाग (कोयर) को प्रायः फेंक दिया जाता है। इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है, परंतु इसका उपयोग अभी भी सीमित है। इस स्थिति में आवश्यकता है कि हम नारियल को केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि उसके कोयर (जटा) के समुचित उपयोग के माध्यम से उद्यमिता और रोजगार के अवसरों के रूप में भी देखें। इससे किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है और बेरोजगारी को कम किया जा सकता है।

नारियल कोयर का महत्व

जैसा कि देखा जाता है, भारत में मंदिरों और अन्य स्थानों पर नारियल जटा के ढेर आसानी से मिल जाते हैं। यह न केवल स्थान घेरता है बल्कि पर्यावरण प्रदूषण का कारण भी बनता है। इसलिए इसका पुनः उपयोग एक अत्यंत प्रभावी समाधान है, जो न केवल आय बढ़ाने में सहायक होगा बल्कि कचरे को भी कम करेगा। भारत विश्व के कुल कोयर उत्पादन का दो-तिहाई से अधिक हिस्सा उत्पादन करता है। केरल को भारतीय कोयर उद्योग का केंद्र माना जाता है, जहाँ से लगभग 85% कोयर उत्पाद बनाए जाते हैं। इसके बावजूद, देश उपलब्ध कुल नारियल छिलकों का केवल कुछ भाग ही कोयर उद्योग में उपयोग हो पाता है, जबकि शेष या तो ईंधन के रूप में उपयोग होता है या बेकार चला जाता है। इस उपयोग स्तर को बढ़ाने की अत्यंत आवश्यकता है। कोयर उद्योग एक कृषि-आधारित ग्रामीण उद्योग है, जो देश के प्रमुख नारियल उत्पादक राज्यों में लोगों को रोजगार प्रदान करता है। नारियल जटा का पुनः उपयोग ग्रामीण लोगों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर सकता है। इस उद्योग को शुरू करने के लिए कच्चा माल आसानी से उपलब्ध होता है और कम कौशल की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण के माध्यम से ग्रामीण लोग इस कार्य को सीख सकते हैं। कई संस्थाएँ ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने के लिए ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करती हैं। घरेलू स्तर पर भी नारियल के कोयर के विभिन्न प्रोडक्ट्स बनाये जा सकते हैं। नारियल जटा से सजावटी वस्तुएँ, पेन स्टैंड, जूते-चप्पल, दीवार सजावट, लैंप, घंटियाँ, खिलौने, बेल्ट, तोरण, लेटर बॉक्स आदि कम लागत में बनाए जा सकते हैं। ग्रामीण महिलाएँ इन वस्तुओं को घर पर ही बनाकर आय अर्जित कर सकती हैं। यह उद्यम किसानों की आय बढ़ाने और

आर्थिक सशक्तिकरण का एक प्रभावी विकल्प बन सकता है। भारत में ग्रामीण विकास और महिला सशक्तिकरण अत्यंत आवश्यक है, और कोयर उद्योग इस दिशा में एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हो सकता है। यह न केवल महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाता है, बल्कि उन्हें स्थायी और दीर्घकालिक आय का स्रोत भी प्रदान करता है।

कोयर से बनने वाले विविध उत्पाद

कोयर की विशेषता इसकी मजबूती, टिकाऊपन और पर्यावरण अनुकूलता है। नारियल जटा के बहुआयामी उपयोग हैं और यह आसानी से उपलब्ध कच्चा माल है। इससे अनेक प्रकार के उत्पाद बनाए जा सकते हैं, जिन्हें घरेलू, कृषि, औद्योगिक और सजावटी उपयोगों में प्रयोग किया जाता है।

(1) घरेलू एवं सजावटी उत्पाद

कोयर से बने मैट, कालीन, रस्सियाँ, झूमर, दीवार सजावट, लैंप, टोकरी, बैग, मूर्तियाँ आदि बाजार में काफी लोकप्रिय हैं। ये उत्पाद न केवल उपयोगी होते हैं, बल्कि पर्यावरण के अनुकूल भी होते हैं।



(2) कृषि एवं बागवानी उत्पाद

कोकोपीट, कोको पॉट, ग्रो स्टिक, मल्लिंग मैट, पौधों के लिए टोकरी आदि कृषि और बागवानी में अत्यंत उपयोगी हैं। ये मिट्टी की नमी बनाए रखने, जड़ों की सुरक्षा और पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं।

(3) औद्योगिक एवं निर्माण क्षेत्र

कोयर जियोटेक्सटाइल्स, सड़कों के किनारों पर मिट्टी कटाव रोकने, नदी तट संरक्षण और भूमि सुधार में उपयोग किए जाते हैं। इसके अलावा कोयर बोर्ड, पैनल और फर्नीचर उद्योग में भी इसका उपयोग बढ़ रहा है।

(4) निर्यात उत्पाद

भारत से कोयर उत्पाद देशों में निर्यात किए जाते हैं। कोयर मैट, जियोटेक्सटाइल्स, कोकोपीट और अन्य उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय बाजार में बड़ी मांग है।





ये केवल कुछ उदाहरण हैं; वास्तव में कोयर उत्पादों की संभावनाएँ असीमित हैं। यह उद्योग ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच एक सेतु का कार्य करता है, जिससे रोजगार सृजन और आय में वृद्धि होती है।

कोयर उद्योग के लाभ

- 1. रोजगार सृजन:** यह उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाता है और बेरोजगारी को कम करता है।
- 2. कम लागत में उद्यम:** कोयर उद्योग को कम पूंजी में शुरू किया जा सकता है, जिससे छोटे और सीमांत किसान भी इसे अपना सकते हैं।
- 3. महिला सशक्तिकरण:** इस उद्योग में महिलाओं की भागीदारी अधिक है, जिससे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनती हैं।
- 4. पर्यावरण संरक्षण:** कोयर उत्पाद जैविक, पुनर्चक्रण योग्य और पर्यावरण के अनुकूल होते हैं।
- 5. निर्यात क्षमता:** अंतरराष्ट्रीय बाजार में कोयर उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है, जिससे विदेशी मुद्रा अर्जन में सहायता मिलती है।
- 6. मूल्य संवर्धन और बाजार संभावनाएँ :** कोयर उद्योग में मूल्य संवर्धन की अपार संभावनाएँ हैं। केवल कच्चे रेशे की बिक्री के बजाय यदि उससे उत्पाद तैयार किए जाएँ, तो लाभ कई गुना बढ़ सकता है। घरेलू बाजार में सजावटी और उपयोगी कोयर उत्पादों की मांग बढ़ रही है। ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से छोटे उत्पादक भी अपने उत्पाद सीधे ग्राहकों तक पहुँचा सकते हैं।

चुनौतियाँ और समाधान

हालाँकि कोयर उद्योग में अपार संभावनाएँ हैं, लेकिन कुछ चुनौतियाँ भी हैं:

- 1. तकनीकी ज्ञान की कमी:** कई किसानों और महिलाओं को आधुनिक तकनीकों की जानकारी नहीं होती।
- 2. विपणन की समस्या:** उत्पाद तैयार होने के बाद उन्हें बाजार तक पहुँचाना कठिन होता है।

3. वित्तीय संसाधनों की कमी: प्रारंभिक निवेश के लिए धन की कमी होती है।

4. गुणवत्ता नियंत्रण: अंतरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा के लिए गुणवत्ता बनाए रखना आवश्यक है।

समाधान:

- 1. नियमित प्रशिक्षण और जागरूकता कार्यक्रम:** किसानों और महिलाओं को आधुनिक तकनीक, मशीनों के उपयोग, उत्पाद निर्माण और पैकेजिंग की जानकारी देने के लिए नियमित प्रशिक्षण आवश्यक है। साथ ही, बाजार की मांग और सरकारी योजनाओं की जानकारी से उनकी कार्यकुशलता और आय बढ़ती है।
- 2. सहकारी समितियाँ और डिजिटल प्लेटफॉर्म:** समूह में काम करने से लागत कम होती है और बाजार तक पहुँच आसान होती है। ई-कॉमर्स और सोशल मीडिया के माध्यम से उत्पादों की सीधी बिक्री संभव है, जिससे बेहतर लाभ मिलता है।
- 3. बैंक ऋण, सब्सिडी और माइक्रोफाइनेंस:** कम पूंजी की समस्या को दूर करने के लिए सरकारी योजनाएँ, बैंक ऋण और माइक्रोफाइनेंस सहायक हैं। इससे छोटे उद्यम आसानी से शुरू किए जा सकते हैं।
- 4. मानकीकरण और गुणवत्ता प्रशिक्षण:** उच्च गुणवत्ता और निर्धारित मानकों के अनुसार उत्पाद बनाने से बाजार में प्रतिस्पर्धा बढ़ती है और बेहतर कीमत मिलती है। इसके लिए गुणवत्ता प्रशिक्षण और सही फिनिशिंग पर ध्यान देना जरूरी है।

नारियल जटा (कोयर) आधारित व्यवसाय का उदाहरण

गुजरात के बनासकांठा जिले में स्थित अंबाजी मंदिर हर वर्ष लाखों श्रद्धालुओं को आकर्षित करता है। हितेंद्र रामी, माउंट आबू (राजस्थान) से सटे बनासकांठा के अंबा मंदिर क्षेत्र के एक प्रेरणादायक उद्यमी हैं। उन्होंने मंदिर के कचरे विशेषकर नारियल के छिलके को उपयोगी उत्पादों में बदलकर एक सफल व्यवसाय खड़ा किया है। मात्र 15-20 रुपए के नारियल छिलके से वे देव प्रतिमाएँ, चप्पल, जूते और



सजावटी वस्तुएँ बनाकर हजारों रुपए की आय अर्जित करते हैं। 'नंदनवन' नामक इस उद्यम का वार्षिक टर्नओवर लाखों रुपए है और इसके माध्यम से कई लोगों, विशेषकर आदिवासी महिलाओं, को रोजगार मिला है। लगभग 25 से भी अधिक वर्ष पहले एक साधारण से विचार से शुरू हुआ यह कार्य आज बड़े स्तर पर फैल चुका है। हितेंद्र रामी को उनके नवाचार और योगदान के लिए गुजरात नारियल विकास बोर्ड द्वारा सम्मानित भी किया जा चुका है।

निष्कर्ष

नारियल जटा, जिसे पहले अपशिष्ट समझा जाता था, आज किसानों की आय बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन बन सकता है। यदि इसके उपयोग को बढ़ावा दिया जाए और उचित प्रशिक्षण एवं संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ, तो यह

आत्मनिर्भर भारत की दिशा में एक मजबूत कदम सिद्ध होगा। यह उद्योग न केवल आय बढ़ाने में सहायक है, बल्कि रोजगार सृजन, पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि सही दिशा में प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता और बाजार सुविधा उपलब्ध कराई जाए, तो यह उद्योग ग्रामीण भारत की तस्वीर बदल सकता है। आज आवश्यकता है कि किसान और महिलाएँ इस उद्योग की संभावनाओं को समझें और सरकार तथा अन्य संस्थाओं के सहयोग से इसे अपनाएँ। कोयल उद्योग वास्तव में "आत्मनिर्भर भारत" की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जहाँ स्थानीय संसाधनों का उपयोग कर वैश्विक स्तर पर पहचान बनाई जा सकती है।





नाइट्रोजन स्थिरीकरण का जैव रसायन शास्त्र: नाइट्रोजिनेस और राइजोबियम की भूमिका

प्रिया पांडेय

शोधार्थी, ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना, म.प्र.

नाइट्रोजन पौधों की वृद्धि के लिए जरूरी पोषक तत्व है, जो प्रोटीन, न्यूक्लिक एसिड, और क्लोरोफिल का हिस्सा होता है। वायुमंडल में 78% नाइट्रोजन गैस मौजूद है, लेकिन यह सीधे उपयोग नहीं होती। इसे पहले अमोनिया (NH_3), नाइट्रेट (NO_3^-) या अमोनियम (NH_4^+) में बदलना पड़ता है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण एक जैविक प्रक्रिया है, जो कुछ सूक्ष्मजीवों द्वारा की जाती है। इसमें राइजोबियम और फलीदार पौधों के बीच सहजीवी संबंध अहम है। राइजोबियम, नाइट्रोजिनेस एंजाइम की मदद से नाइट्रोजन को अमोनिया में बदलता है, जो जड़ की ग्रंथिकाओं में कम ऑक्सीजन स्तर पर कार्य करता है। यह लेख नाइट्रोजन स्थिरीकरण की जैव रासायनिक प्रक्रिया, राइजोबियम और नाइट्रोजिनेस की भूमिका, और स्थिर कृषि में इसके योगदान को स्पष्ट करता है।

जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण (बीएनएफ)

जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह कुछ बैक्टीरिया और आर्किया द्वारा किया जाता है, जिनमें नाइट्रोजिनेस एंजाइम होता है, जो उन्हें नाइट्रोजन गैस को अमोनिया में बदलने में सक्षम बनाता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले जीव तीन प्रकार के होते हैं:

1. **मुक्त-जीवित जीव-** ये मिट्टी में स्वतंत्र रूप से रहते हैं, जैसे कि एज़ोटोबैक्टर और क्लोस्ट्रीडियम की कुछ प्रजातियाँ।
2. **सहसंबंधी जीव-** ये पौधों के साथ घनिष्ठ संबंध में रहते हैं, जैसे कि एज़ोस्परिलम घास के साथ।
3. **सहजीवी जीव-** ये मेजबान पौधों के साथ पारस्परिक संबंधों में रहते हैं, जैसे कि राइजोबियम फलियों के साथ।

इनमें सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण सबसे प्रभावी और कृषि में अत्यधिक उपयोगी होती है।

राइजोबियम और फलीदार पौधों का सहजीवन

राइजोबियम मिट्टी में पाया जाने वाला बैक्टीरिया है जो मटर, चना, सोयाबीन, मसूर जैसे दलहन पौधों की जड़ों के साथ सहजीवी संबंध बनाता है। पौधों की जड़ें रासायनिक संकेत देती हैं, जिससे राइजोबियम आकर्षित होता है और जड़ों में संक्रमण श्रेड बनाकर नोड्यूल (गाँठ) विकसित करता है।

नोड्यूल के भीतर, राइजोबियम बैक्टेरोइड नामक रूप में बदलकर नाइट्रोजन को स्थिर करता है। लेघेमोग्लोबिन नामक एक विशेष प्रोटीन वहाँ ऑक्सीजन की मात्रा को नियंत्रित करता है ताकि नाइट्रोजिनेस एंजाइम कार्य कर सके।

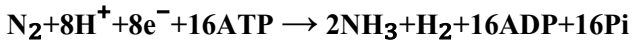


नाइट्रोजिनेस की संरचना और कार्य

नाइट्रोजिनेस वह एंजाइम है जो नाइट्रोजन-फिक्सिंग जीवों को वायुमंडलीय नाइट्रोजन को अमोनिया में बदलने में सक्षम बनाता है। यह दो मुख्य भागों से बना है:

1. **आयरन (Fe) प्रोटीन** - अभिक्रिया के लिए इलेक्ट्रॉनों की आपूर्ति करता है।
2. **मोलिब्डेनम-आयरन (MoFe) प्रोटीन** - वह स्थान जहाँ नाइट्रोजन का अपचयन हो जाता है।

नाइट्रोजिनेस द्वारा उत्प्रेरित समग्र अभिक्रिया:



यह अभिक्रिया ऊर्जा-गहन होती है, जिसमें प्रति नाइट्रोजन अणु को स्थिर करने के लिए 16 ATP (एडेनोसिन ट्राइफॉस्फेट) अणुओं की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजिनेस एंजाइम ऑक्सीजन के प्रति अत्यंत संवेदनशील होता है, इसलिए यह नोड्यूल के सुरक्षित वातावरण में कार्य करता है, जहाँ ऑक्सीजन का स्तर सावधानीपूर्वक नियंत्रित किया जाता है।

अनुसंधान डेटा और प्रगति

कई अध्ययनों के अनुसार, जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण (BNF) मृदा उर्वरता और फसल उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है। हेरिज़ एट अल. (2008) के अनुसार, यह प्रक्रिया प्रति वर्ष 50–300 किग्रा/हेक्टेयर नाइट्रोजन प्रदान कर सकती है, जो लेग्यूम प्रजाति और पर्यावरण पर निर्भर है।

- **सोयाबीन केस स्टडी:** सोयाबीन की खेती में, सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण फसल की कुल नाइट्रोजन आवश्यकताओं का 60–70% तक पूरा कर सकता है। भारत में, राइजॉबियम स्ट्रेनों से बीजों का इनोकुलेशन करने पर 15-30% तक उपज में वृद्धि देखी गई है।
- **चना और अरहर:** भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा किए गए प्रयोगों से पता चला है कि चना और अरहर में BNF के माध्यम से 40–60 किग्रा/हेक्टेयर नाइट्रोजन की बचत संभव है, जिससे कृत्रिम उर्वरकों की आवश्यकता में काफी कमी आती है।

कृषि में योगदान

जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण आधुनिक सतत कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह फसलों को स्वाभाविक रूप से नाइट्रोजन प्रदान कर रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को काफी हद तक कम करता है।

- रासायनिक उर्वरकों से जुड़ी जल प्रदूषण और ग्रीनहाउस गैस जैसी समस्याओं को कम करता है।
- यह किसानों के लिए एक कम लागत वाला समाधान है, खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ कृत्रिम उर्वरकों की उपलब्धता सीमित है।
- **मृदा उर्वरता में वृद्धि:** लेग्यूम फसलें मृदा में नाइट्रोजन जोड़ती हैं, जिससे वर्तमान व भविष्य की फसलों को लाभ होता है।
- **फसल चक्र को प्रोत्साहन:** लेग्यूम और अनाज फसलों का बारी-बारी से उपयोग करने से मृदा संतुलन बना रहता है और उत्पादन बढ़ता है।
- **मृदा सूक्ष्मजीव जीवन में सुधार:** नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जीवाणु सूक्ष्मजीव विविधता बढ़ाते हैं, जिससे मृदा स्वस्थ और टिकाऊ बनती है।
- **जलवायु लक्ष्यों में सहयोग:** कृत्रिम इनपुट की आवश्यकता घटाकर, जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण कृषि का कार्बन फुटप्रिंट कम करता है और जलवायु-स्थिर खेती को बढ़ावा देता है।

भविष्य की संभावनाएँ:

- **आनुवंशिक सुधार:** अनुसंधान का लक्ष्य चावल और गेहूँ जैसी प्रमुख अनाज फसलों में भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता विकसित करना है।
- **सूक्ष्मजीव मिश्रण:** लाभकारी सूक्ष्मजीवों का मिश्रण उपयोग करने से पौधों का संपूर्ण स्वास्थ्य और पोषक तत्व अवशोषण बेहतर हो सकता है।
- **सटीक उपयोग:** मृदा परीक्षण और स्मार्ट कृषि तकनीकों की मदद से इनोकुलेंट्स का उपयोग अधिक प्रभावी तरीके से किया जा सकता है।

राइजॉबियम और लेग्यूम के बीच नाइट्रोजन स्थिरीकरण साझेदारी पौधों को आवश्यक नाइट्रोजन प्रदान करने का एक प्राकृतिक और प्रभावी तरीका है। यह प्रक्रिया न केवल कृषि उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता के लिए भी आवश्यक है। कृत्रिम उर्वरकों की आवश्यकता को कम करके, जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण ऐसे कृषि तंत्र को बढ़ावा देता है जो अधिक संतुलित, प्रभावी और पारिस्थितिक रूप से सुरक्षित होते हैं। भविष्य में, वैज्ञानिक खोजें इस प्रक्रिया को और प्रभावशाली बना सकती हैं, जिससे वैश्विक खाद्य सुरक्षा को मजबूती मिलेगी।





Owner Name मनीष कुमार, सतीश कुमार, पन्डाल, अनूप कुमार, उमा देवी, रामलखन, राजेश कुमार	Sub District/Taluka Biswan	Village Kotra	Survey No. 278
Sub Survey Number 1383130278000012	Farmer Total Area 0.162 -	Survey Date 29/01/2026 10:01:58 AM	

Sl. No.	Land Usage	Crop Name	Sowing Date	Crop Status	Source of Irrigation	Area	Photos
1	Agricultural	अम		Harvesting stage	-	0.362 Hectare	

चित्र-2: GIS आधारित फोटो तकनीक के माध्यम से खेत की वास्तविक फसल की ली गई तस्वीर



Form Image



Focal Length: 1.68mm
27/01/2026 12:13:00
27.551107, 80.967201

चित्र-3: GIS आधारित फोटो तकनीक के माध्यम से खेत की वास्तविक फसल की ली गई तस्वीर

भारत सरकार के प्रेस सूचना ब्यूरो (PIB) तथा कृषि मंत्रालय के अनुसार, 19 मार्च 2026 तक देशभर में 9.20 करोड़ से अधिक किसान आईडी बनाई जा चुकी हैं। उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश जैसे राज्य इस डिजिटल परिवर्तन में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं, जो भारतीय कृषि के डिजिटल रूपांतरण का स्पष्ट प्रमाण है।

फार्मर रजिस्ट्री क्या है (What is the Farmer Registry)?

फार्मर रजिस्ट्री एक डिजिटल डेटाबेस है, जिसमें किसानों की व्यक्तिगत जानकारी, आधार संख्या, भूमि अभिलेख (भूलेख) तथा बोर्डेड फसलों का विवरण सुरक्षित रखा जाता है। यह मुख्यतः निम्नलिखित तीन स्तंभों पर आधारित है—

1. **व्यक्तिगत पहचान (किसान कौन है?)** – आधार के माध्यम से किसान का प्रमाणीकरण किया जाता है।

2. **भूमि रिकॉर्ड (Land Records)** – राज्य के भूलेख डेटा के साथ सीधा समन्वय स्थापित किया जाता है, जिससे भूमि की स्थिति एवं क्षेत्रफल की जानकारी प्राप्त होती है। यह भू-संदर्भित मानचित्रों (Geo-referenced Maps) से भी जुड़ा होता है।
3. **फसल विवरण (Crop Details)** डिजिटल क्रॉप सर्वे (DCS) के माध्यम से खेतों में बोर्डेड फसलों का विवरण दर्ज किया जाता है।

फार्मर रजिस्ट्री पंजीकरण की प्रक्रिया: चरण-दर-चरण (Farmer Registry Registration Process: Step-by-Step)

फार्मर रजिस्ट्री पंजीकरण प्रक्रिया को सरल एवं पारदर्शी बनाने के उद्देश्य से ऑनलाइन प्रणाली विकसित की गई है। किसान स्वयं अथवा निकटतम जन सेवा केंद्र (CSC) के माध्यम से अपनी पहचान, भूमि विवरण तथा आवश्यक दस्तावेजों का सत्यापन कर पंजीकरण करा सकते हैं। इसकी चरणबद्ध प्रक्रिया निम्न प्रकार है—

आवश्यक दस्तावेज-

- आधार कार्ड (पहचान सत्यापन हेतु)
- भूमि अभिलेख/खतौनी
- बैंक पासबुक (लाभ हस्तांतरण हेतु)
- आधार से लिंक मोबाइल नंबर (OTP सत्यापन हेतु)

चरण 1: आधिकारिक पोर्टल पर प्रवेश: आवेदक को सबसे पहले आधिकारिक किसान पंजीकरण पोर्टल अथवा राज्य के एग्रीस्टैक पोर्टल, जैसे - उत्तर प्रदेश राज्य के लिए upfr.agristack.gov.in पर जाना होता है।

चरण 2: नया खाता निर्माण: “नया खाता बनाएं” विकल्प पर क्लिक करके आधार संख्या दर्ज की जाती है। इसके पश्चात आधार से जुड़े मोबाइल नंबर पर प्राप्त OTP द्वारा पहचान सत्यापित की जाती है।

चरण 3: मोबाइल नंबर सत्यापन: आवेदक अपना सक्रिय मोबाइल नंबर दर्ज करता है तथा OTP के माध्यम से सत्यापन प्रक्रिया पूर्ण करता है।

चरण 4: पासवर्ड निर्माण: सत्यापन के बाद उपयोगकर्ता अपने खाते हेतु एक सुरक्षित पासवर्ड निर्धारित करता है।

चरण 5: पोर्टल पर लॉगिन: मोबाइल नंबर एवं पासवर्ड की सहायता से पोर्टल पर लॉगिन किया जाता है।

चरण 6: किसान के रूप में पंजीकरण: लॉगिन के पश्चात “किसान के रूप में पंजीकरण करें” विकल्प का चयन किया जाता है।

चरण 7: व्यक्तिगत विवरण भरना: इस चरण में आवेदक को अपना नाम, लिंग, श्रेणी, पता तथा अन्य आवश्यक जानकारी दर्ज करनी होती है।

चरण 8: भूमि विवरण जोड़ना: आवेदक अपनी भूमि से संबंधित जानकारी जैसे जिला, तहसील, गाँव, खाता संख्या अथवा सर्वे नंबर दर्ज करता है।

चरण 9: आवश्यक दस्तावेज अपलोड करना: आधार कार्ड, भूमि अभिलेख, बैंक पासबुक तथा पासपोर्ट आकार के फोटो की स्कैन प्रतियाँ अपलोड की जाती हैं।

चरण 10: आवेदन जमा एवं ई-हस्ताक्षर: सभी विवरणों की पुष्टि के बाद आवेदन पत्र जमा किया जाता है तथा आधार आधारित OTP के माध्यम से ई-हस्ताक्षर (e-sign) प्रक्रिया पूर्ण की जाती है।

चरण 11: रसीद डाउनलोड करना: पंजीकरण पूर्ण होने के बाद आवेदक को नामांकन आईडी एवं रसीद प्राप्त होती है, जिसे भविष्य के उपयोग हेतु सुरक्षित रखा जाता है।

फार्मर रजिस्ट्री के प्रमुख लाभ (Key Benefits of the Farmer Registry):

फार्मर रजिस्ट्री के पंजीकृत किसानों के लिए प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं-

1. सरकारी योजनाओं तक सीधी पहुँच

अब किसानों को PM-KISAN, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (PMFBY) तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य (MSP) पर फसल विक्रय हेतु बार-बार दस्तावेज जमा करने की आवश्यकता नहीं होगी। फार्मर आईडी के माध्यम से डेटा स्वतः सत्यापित हो जाता है।

2. पारदर्शी एवं त्वरित भुगतान

डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर (DBT) के माध्यम से सब्सिडी, आपदा राहत एवं अन्य योजनाओं की राशि सीधे किसानों के बैंक खाते में पहुँचती है। इससे भुगतान प्रक्रिया अधिक पारदर्शी एवं प्रभावी बनती है।

3. सटीक कृषि सलाह (Precision Farming)

यह डेटाबेस कृषि वैज्ञानिकों को क्षेत्र-विशिष्ट मिट्टी स्वास्थ्य, मौसम पूर्वानुमान एवं कीट नियंत्रण संबंधी सलाह प्रदान करने में सहायता करता है। ‘किसान ई-मित्र’ जैसे AI आधारित चैटबॉट इसी डेटा का उपयोग कर विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में किसानों की सहायता कर रहे हैं।

4. ऋण एवं बीमा में सुविधा

बैंकों के लिए किसानों की साख (Creditworthiness) का आकलन करना आसान हो जाता है, जिससे कम ब्याज दर पर किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) एवं अन्य कृषि ऋण प्राप्त करना सरल होता है।

फार्मर रजिस्ट्री की चुनौतियाँ एवं समाधान (Challenges and Solutions of Farmer Registry):

हालाँकि फार्मर रजिस्ट्री (Farmer Registry) भारतीय कृषि के डिजिटलीकरण की दिशा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहल है, फिर भी इसके सफल क्रियान्वयन के सामने कुछ प्रमुख चुनौतियाँ मौजूद हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy) की कमी के कारण अनेक किसान ऑनलाइन प्रक्रियाओं को समझने और उपयोग करने में कठिनाई महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त कई गाँवों में इंटरनेट कनेक्टिविटी तथा तकनीकी सुविधाओं का अभाव भी पंजीकरण प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या भूमि अभिलेखों (Land Records) एवं आधार विवरण में नाम, जन्मतिथि या अन्य जानकारी की विसंगतियाँ हैं, जिसके कारण सत्यापन में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। साथ ही



किसानों के डेटा की सुरक्षा (Data Security) एवं गोपनीयता (Privacy) को लेकर भी चिंताएँ सामने आती हैं।

इन चुनौतियों के समाधान हेतु सरकार द्वारा फेस ऑथेंटिकेशन (Face Authentication), आधार आधारित सत्यापन तथा कॉमन सर्विस सेंटर (CSC) के विस्तारित नेटवर्क का उपयोग किया जा रहा है, जिससे किसानों को स्थानीय स्तर पर सहायता उपलब्ध हो सके। इसके साथ ही पंचायतों, कृषि विभागों एवं ग्रामीण संस्थाओं द्वारा जागरूकता अभियान चलाकर किसानों को डिजिटल सेवाओं के प्रति शिक्षित करना आवश्यक है। यदि इन समस्याओं का प्रभावी समाधान किया जाता है, तो फार्मर रजिस्ट्री भारतीय कृषि क्षेत्र में पारदर्शिता, दक्षता तथा किसान सशक्तिकरण का एक मजबूत आधार सिद्ध होगी।

फार्मर रजिस्ट्री का कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रभाव (Impact of the Farmer Registry on the Agricultural Economy)

फार्मर रजिस्ट्री भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। आर्थिक दृष्टिकोण से यह प्रणाली 'सूचना की विषमता' (Information Asymmetry) को कम करती है, जिससे कृषि बाजार अधिक पारदर्शी बनता है। इसका सबसे बड़ा लाभ सटीक लक्षित वितरण (Targeted Delivery) के रूप में देखा जा सकता है, जहाँ सरकारी सब्सिडी एवं वित्तीय सहायता बिना किसी बिचौलिये के सीधे पात्र किसानों तक पहुँचती है। इससे सरकारी व्यय में होने वाली 'लीकेज' में कमी आती है। वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) के क्षेत्र में यह प्रणाली बैंकों को किसानों की साख का विश्वसनीय डिजिटल रिकॉर्ड उपलब्ध कराती है, जिससे संस्थागत ऋण (Institutional Credit) तथा किसान क्रेडिट कार्ड (KCC) प्राप्त करना सरल हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, वास्तविक समय (Real-time) में फसल एवं भूमि संबंधी आँकड़ों की उपलब्धता से सरकार को प्रभावी MSP खरीद

नीति एवं फसल बीमा योजनाओं के संचालन में वैज्ञानिक सहायता प्राप्त होती है। GPS एवं GIS आधारित फोटो तकनीक के माध्यम से खेतों की वास्तविक फसल का डेटा संकलित किया जा रहा है, जिससे फसल आकलन अधिक सटीक बन रहा है। अंततः, यह डिजिटल ढाँचा कृषि व्यापार की लेन-देन लागत (Transaction Cost) को कम कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की दक्षता एवं उत्पादकता में वृद्धि करता है।

निष्कर्ष (Conclusion):

“फार्मर रजिस्ट्री” भारतीय कृषि व्यवस्था में एक क्रांतिकारी (Revolutionary) पहल के रूप में उभर रही है, जो “सशक्त किसान, समृद्ध भारत” के लक्ष्य को वास्तविक रूप प्रदान करती है। यह प्रणाली किसानों को केवल सरकारी योजनाओं के लाभार्थी तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उन्हें एक डिजिटल उद्यमी (Digital Entrepreneur) के रूप में स्थापित करने की दिशा में कार्य कर रही है।

फार्मर रजिस्ट्री के माध्यम से कृषि क्षेत्र में पारदर्शिता (Transparency), डेटा की शुद्धता (Accuracy) तथा योजनाओं की प्रभावशीलता (Effectiveness) में उल्लेखनीय वृद्धि होगी। साथ ही यह प्रणाली लेन-देन लागत (Transaction Cost) को कम करने, कृषि विपणन (Agricultural Marketing) को अधिक व्यवस्थित बनाने तथा किसानों तक योजनाओं का लाभ सीधे और शीघ्र पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगी।

भविष्य में यदि प्रत्येक किसान समय पर अपनी रजिस्ट्री कराकर सही एवं अद्यतन जानकारी उपलब्ध कराए, तो भारत की कृषि व्यवस्था अधिक आधुनिक, तकनीकी रूप से सक्षम तथा किसान हितैषी बन सकेगी। यह पहल आत्मनिर्भर भारत (Self-Reliant India) एवं डिजिटल कृषि (Digital Agriculture) की दिशा में एक मजबूत आधार प्रदान करती है।





बागवानी फसलों के उत्पादन में मल्लिचंग का महत्व

डॉ. सुनील कुमार मंडल

सहायक प्राध्यापक -सह- वैज्ञानिक,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुवनी, बिहार

मल्लिचंग एक ऐसी प्रायोगिक प्रक्रिया है, जिसमें खेत या मिट्टी की सतह को जैविक या अजैविक सामग्रियों से ढक दिया जाता है, ताकि मिट्टी में नमी बनी रहने के कारण पौधों की वृद्धि, विकास एवं अच्छी उपज के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित होने के साथ खरपतवार नियंत्रित हो सके और मिट्टी का तापमान भी संतुलित रहे। मल्लिचंग का शाब्दिक अर्थ “पलवार” यानी मिट्टी को ढकना है। मल्लिचंग मिट्टी की उपरी सतह पर पौधों को चारों तरफ मिट्टी को ढकने के उद्देश्य से किसी भी पदार्थों की विछाई गई एक परत है, जिससे पौधे वृद्धि एवं प्रभारी फसल उत्पादन के लिए बेहतर स्थिति का निर्माण होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य निम्न उल्लेखित है:

- ❖ मिट्टी की सतह से वर्षोत्सर्जन के माध्यम से होने वाली नमी की क्षति को कम करके नमी को संरक्षित रखना।
- ❖ मृदा उर्वरता एवं मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के साथ-साथ खरपतवारों की वृद्धि एवं विकास को अवरोधित करना।
- ❖ फसलों को दिये जाने वाले उर्वरक एवं पोषक तत्वों की पूर्ण उपलब्धता को पौधों के लिए सुनिश्चित करना।

हमारे देश में प्राकृतिक मल्लिचंग/जैविक मल्लिचंग जैसे भूसा, पुआल, घास की कतरने एवं कम्पोस्ट इत्यादि का सदियों से व्यवहार होता रहा है। परन्तु ये प्राकृतिक मल्लिचंग अधिक बड़े पैमाने पर उपयोग में नहीं हो रहा है, क्योंकि इसकी मुख्य कुछ कमियाँ यह है कि ये जल्दी विघटित हो जाते हैं और बार-बार मल्लिचंग की आवश्यकता होती है दूसरा कारण प्राकृतिक

मल्लिचंग से मुख्य फसलों में रोग-व्याधि जैसे फफूंदजनित बीमारियाँ फैलने एवं कीटों को आश्रय प्रदान करने में सहायक होते हैं। अतः विगत 60-70 वर्षों से कृत्रिम पदार्थों से निर्मित मल्लिचंग का काफी उपयोग किया जा रहा है। ये आसानी से विघटित होने वाले पॉलीथीन एल.डी.पी.ई. एवं एच.डी.पी.ई. के विकास होने से फसल उत्पादन के बाद इन प्लास्टिक मल्लिचंग पदार्थों को खेत की मिट्टी में ही दबाकर (अपघटित कर) नष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार इसको खेत से हटाने वाले खर्च को कम करने के साथ पारिस्थितिकीय वातावरण को स्वस्थ बनाये रखा जा सकता है।

मल्लिचंग को प्रोत्साहित करने वाले कारक:

भूमि की घटती जोत और बढ़ती हुई जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए जमीन के प्रत्येक ईंच के टुकड़े का उपयोग सघन खेती एवं उच्च मूल्य वाली फसलों की खेती में संश्लेषित मल्लिचंग का लगातार उपयोग किया जा रहा है जो कुछ परिस्थितियाँ मल्लिचंग को बढ़ावा देने में सहायक है और ये परिस्थितियाँ निम्न उल्लेखित है:

- ❖ शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी।
- ❖ कम क्षेत्र व कम समय में अधिक उत्पादन लेना।
- ❖ उच्च गुणवत्ता के उत्पादन की मांग (खासकर, सब्जियों एवं फलों के लिए)।
- ❖ फसलों में पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए उच्च क्षमता वाली उर्वरकों का प्रयोग।



प्लास्टिक मल्व से लाभ:

- ✓ यह पानी के लिए अपारगम्य है।
- ✓ यह मल्व सीधे वाष्पन क्रिया को प्रभावित कर जलवाष्प के रूप में होने वाली पानी की क्षति को अवरूद्ध करती है, जिससे मिट्टी की नमी संरक्षित रहती है।
- ✓ प्लास्टिक मल्व वाष्पन क्रिया को कम करती है, जिसके कारण जल में लवण की सान्द्रता बढ़ने नहीं पाती है।
- ✓ संश्लेषित मल्व मृदाजनित बीमारियों के रोगवाहकों के लिए अवरोधक (वैरियर) का काम करती है।
- ✓ संश्लेषित मल्व सौर ताप के द्वारा मिट्टी का उपचार करने के लिए उपयोगी है (विशेषकर नर्सरी की क्यारियों के लिए)।
- ✓ मल्व के उपयोग से फसलों के लिए उपयुक्त मृदा की संरचना लम्बे समय तक बनी रहती है।
- ✓ बीजों का अकारन 2-3 दिन पहले ही हा जाता है।
- ✓ चना, मूँगफली आदि फसलों में नोडयूलेशन (सहजीवी प्रवाक्रिया) अच्छी होती है।
- ✓ यह मल्व सूत्रकृतियों (निमेटोड) की संख्या को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं।
- ✓ जैविक मल्व की तुलना में यह अधिक टिकाऊ होता है।

मल्व के प्रकार:

मृदा मल्व: यदि मिट्टी की उपरी सतह को ढीला कर दिया जाय तो यह मल्व की तरह कार्य करने लगती है, इससे बाष्पन दर कम हो जाती है और मिट्टी की नमी संरक्षित रहती है। इसे भुरभुरी और ढीली मृदा मल्व या धूल मल्व भी कहा जा सकता है। उगी हुई फसलों में अंतःकर्षण क्रियाओं के द्वारा इस मल्व का निर्माण होता है। प्रायः काली मिट्टी में मिट्टी की नमी को अधिक समय तक बनाये रखने के लिए अंतःकर्षण क्रिया बहुत उपयोगी तरीका है।

फसल अवशेष मल्व: विभिन्न कृषिगत फसल के अवशेषों (गेहूँ के टूठ एवं अरहर, कपास इत्यादि फसलों के तने) को कटाई के उपरान्त खेतों में छोड़ दिये जाते हैं तो इसे फसल अवशेष मल्व कहा जाता है। इस प्रकार की मल्विंग से मृदा अपरदन कम होता है और वाष्पन के द्वारा मिट्टी की नमी को भी संरक्षित किया जा सकता है। अतः वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन की पिरिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए तरबूज, खरबूज, करेला पटल इत्यादि सब्जियां एवं आम, अमरूद नींबू आदि फलों की खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

स्ट्रॉ मल्व (पुआल वा सुखी घास मल्व): जब मल्व के रूप में भूसा या पैरा को भूमि में पलवार के रूप में बिछा दिया जाता है तो इसे स्ट्रॉ मल्व या भूसा पलवार (मल्व) कहते हैं। यह भूमि का अपरदन तथा वाष्पन क्रिया को कम करने में सहायक होता है।

संश्लेषित (कृत्रिम) मल्व: आजकल इस प्रकार की मल्व का काफी उपयोग हो रहा है। इसमें संश्लेषित पदार्थों से बने मल्वों का प्रयोग होता है, जिसमें प्लास्टिक प्रमुख है। प्लास्टिक फिल्म के रूप में वर्ष 1960 से मल्विंग के रूप में उपयोग हो रहा है, जिसमें एल.डी.पी.ई., एच.डी.पी.ई. एवं लचीली पी.वी.सी. प्लास्टिक का मल्व के रूप में बहुत उपयोग हो रहा है। परन्तु आज कल एल.डी.ई. से निर्मित प्लास्टिक मल्व का बहुतायत में उपयोग हो रहा है, क्योंकि इसकी कीमत कम होती है।

प्लास्टिक मल्व के लिए आवश्यक शर्तें:

- ❖ सर्वप्रथम मल्व वायुरोधी होनी चाहिए अर्थात् किसी भी तरह से नमी का वाष्पन न करने वाली होनी चाहिए।
- ❖ यह थर्मल प्रूफ (तापमान रोधी) होनी चाहिए अर्थात् तापक्रम को संग्रहित करने एवं बाष्पन को रोकने की क्षमता होना चाहिए।
- ❖ मल्व टिकाऊपन होना चाहिए यानि कम से कम एक फसल के मौसम तक चलने वाली होनी चाहिए।

प्लास्टिक मल्व के प्रकार: यह मुख्यतः तीन प्रकार की होती है:

(क) काली प्लास्टिक मल्व

(ख) पारदर्शी प्लास्टिक मल्व

(ग) रंगीन प्लास्टिक मल्व

(क) काली प्लास्टिक मल्व: इस मल्व के उपयोग से ठण्डे मौसम में रात्रि के समय मिट्टी की गर्मी सुरक्षित रहती है जो कि पौधों की बढ़कर में मदद करती है।

(ख) पारदर्शी प्लास्टिक मल्व: इस प्लास्टिक मल्व के उपयोग से काली प्लास्टिक मल्व की तुलना में मिट्टी का तापमान ज्यादा अच्छा बना रहता है, चूँकि पारदर्शिता का गुण होने के कारण सूर्य की किरणें इसमें से पार हो जाते हैं। अतः इस फिल्म के उपयोग से इसके नीचे रूकी मिट्टी में खरपतलवार पैदा होने की संभावना बनी रहती है।

(ग) रंगीन प्लास्टिक मल्व: यदि प्लास्टिक मल्व को एलुमिनियम रंग से पेंट कर दिया जाय तो सफेद रंग के कारण उनका परावर्तन करने का गुण बढ़ जाता है, जिससे देरी से लगने वाली फसलें ठंडी रहती है, जिसके परिणामस्वरूप उच्च गुणवत्ता का सब्जी उत्पादन प्राप्त होता है। इसे चमकीली प्लास्टिक पावर कहते हैं। इस प्रकार बाजार में अवरक्त (इन्फ्रारेड) मल्व भी उपलब्ध है। ये मल्व मिट्टी को काली प्लास्टिक मल्व की तुलना में अधिक ठंडा रखते हैं, जिससे खरपतवार का उगना



कम हो जाता है। काली प्लास्टिक मल्व की तुलना में इसमें फसलें 7-10 दिन पहले तैयार हो जाते हैं।

प्लास्टिक मल्व का चयन

किसी भी प्रकार की मल्व का चयन पारिस्थितिकीय स्थिति एवं प्राथमिक वित्तीय उद्देश्यों पर निर्भर करता है जो निम्न उल्लेखित है:

पारिस्थितिकीय	प्लास्टिक मल्व के प्रकार का उपयोग
बरसात के मौसम	पर्फॉरेटेड (छिद्रित) मल्व
उद्यान या बगीचा	मोटी मल्व
मिट्टी का सौर्यताप उपचार	पतली पारदर्शी मल्व
सौर्यताप द्वारा खरपतवार का नियंत्रण	पारदर्शी मल्व
फसलीय क्षेत्रों में खरपतवार नियंत्रण	काली मल्व
बलूई मिट्टी	काली मल्व
लवणीय जल उपयोग	काली मल्व
जायद की खेती	सफेद मल्व
कीटों से सुरक्षा के लिए	सिल्वर मल्व
बीजों का जल्द अंकुरण के लिए	पतली पारदर्शी मल्व

विभिन्न रंगों की प्लास्टिक मल्व का सब्जियों के उत्पादन पर प्रभाव:

लता वर्गीय सब्जियाँ: मल्विंग के प्रभाव से लता वर्गीय फसलों में पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। काली प्लास्टिक मल्व की अपेक्षा गहरी नीली प्लास्टिक मल्व में बेहतर परिणाम मिलते हैं। औसतन 30 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि देखी गई है, जबकि पीली प्लास्टिक मल्व के उपयोग से उत्पादन काफी कम पाया गया है।

बैंगन: बैंगन में काली प्लास्टिक मल्व की अपेक्षा लाल और धूसर रंग की प्लास्टिक मल्व अधिक प्रभावकारी है। औसतन 12 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि पायी गई है। मल्व में जब फसल को पानी व तापक्रम के लिए स्ट्रेस कंडीशन (तनाव की स्थिति) में रखा जाता है तब ज्यादा बेहतर परिणाम देखे गये है।

तरबूज/खरबूज: इस फसल में पारदर्शक, काली और धूसर रंग की एल.डी.पी.ई. प्लास्टिक फिल्म का उपयोग किया जाता है। प्रयोग के द्वारा पाया गया है कि मल्विंग के उपयोग से उत्पादन में वृद्धि होता है। पारदर्शी फिल्म के उपयोग से उपज में 54 प्रतिशत, जबकि धूसर फिल्म के उपयोग से 62 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है।

प्याज: इस फसल में विभिन्न रंगों की प्लास्टिक मल्व जैसे लाल, सिल्वर और काली में बिना मल्व की फसल से लगभग औसतन 24 प्रतिशत कन्दों की उपज में वृद्धि देखी गई है।

आलू: आलू की फसल में बिना मल्व की अपेक्षा लाल, सिल्वर और काली रंग के प्लास्टिक मल्व के उपयोग से लगभग 24 प्रतिशत की उपज में वृद्धि देखी गई है।

टमाटर: टमाटर की फसल में काली प्लास्टिक मल्व की अपेक्षा लाल प्लास्टिक मल्व के उपयोग से उत्पादन में 12 प्रतिशत की वृद्धि देखी गयी है। साथ ही पौध वृद्धि की अवस्था में अगेती झुलसा का प्रकोप कम पाया गया है। पौध वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में तो अच्छे परिणाम देखने को मिलते हैं, परन्तु अन्य फसलों की तुलना में टमाटर के फसल में मल्विंग का प्रभाव कम देखने को मिलता है।

चुकन्दर: मल्विंग का उपयोग चुकन्दर में खरपतवारों के नियंत्रण स्वच्छ एवं स्वस्थ फसल के साथ पाला से होने वाली हानि से बचाव और अधिक उत्पादन लेने के उद्देश्य से किया जाता है।

सेम वर्गीय सब्जियाँ: प्लास्टिक मल्व के उपयोग से सेम वर्गीय फसलों की उपज में लगभग 50 प्रतिशत की उपज में वृद्धि होती है। बीमारियों एवं माहूँ कीट के प्रकोप से भी फसल का संरक्षण किया जा सकता है।

मृदा के गुणों पर मल्व का प्रभाव:

मल्विंग के उपयोग से मृदा के अपरदन में कमी आती है। तापमान एवं क्षारियता इत्यादि पर नियंत्रण रहता है। इसके अतिरिक्त मिट्टी के नमी में बढ़ोतरी होती है। मिट्टी की संरचना में सुधार होने से फसल की गुणवत्ता और उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

मिट्टी की नमी:

मल्विंग से वाष्पन, वर्षा जल के बहाव की दर तथा खरपतवारों की संख्या कम होती है। भूमि में जल के अधिक नीचे जाने से मिट्टी के नमी में बढ़ोतरी होती है। वाष्पन से भू-सतह का पानी सूर्य की गर्मी से उड़कर वातावरण में चला जाता है तथा नमी में उत्तरोत्तर कमी आती है। मल्विंग के प्रयोग से भू-सतह तथा सूर्य की किरणों के बीच मल्व एक अवरोधक के रूप में कार्य करती है। फलस्वरूप वाष्पन नहीं हो पाता है। धूसर रंग की प्लास्टिक मल्व के परिणाम तापमान पर प्रभाव काली और पारदर्शी प्लास्टिक मल्व के मध्य होते हैं। पौधे से प्राप्त मल्विंग पदार्थ जैसे भूसा, सुखी घास या फसल के अवशेष इत्यादि के उपयोग करने से गर्मियों में मृदा तापमान को घटाया तथा सर्दियों में बढ़ाया जा सकता है।

मृदा क्षारीयता:

अधिकांश शुष्क क्षेत्रों की मिट्टियों में क्षार की अधिकता होती है इसमें से अधिकांश क्षार मिट्टी में घुलनशील होकर पानी के साथ बहते हैं। यदि वर्षा पर्याप्त होती है तो ये क्षार निक्षालन के द्वारा भूमि से दूर हो जाते हैं। परन्तु अपर्याप्त वर्षा की स्थिति में क्षार सीमित क्षेत्र तक ही जा पाते हैं तथा वाष्पन होने पर शीघ्र ही मिट्टी की सतह पर क्षार आ जाते हैं।



यदि वाष्पन को कम तथा मिट्टी में पानी अधिकाधिक प्रवेश हो तो मिट्टी की सतह पर क्षारों के एकीकरण को कम किया जा सकता है।

मृदा की संरचना:

कार्बनिक मलच (जैविक मलच) जैसे भूसा, पुआल, घास की कतरन, फसल अवशेष इत्यादि सड़-गल कर भूमि में जैविक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाते हैं जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है। काली अथवा भारी मिट्टी की संरचना में सुधार कर हल्की हो जाती है, जबकि बहुत हल्की मिट्टी में जीवांश के मिलने से भारीपन आ जाता है। जिस प्रकार गोबर की खाद के उपयोग से मिट्टी को पोषक तत्व तो मिलता ही है, साथ ही मिट्टी की संरचना में भी सुधार होता है। प्लास्टिक मलच पर हवा और बारिश की तेज बूंदों के कारण कण हटने से मिट्टी की संरचना पर पड़ते वाले प्रतिकूल प्रभाव से मिट्टी को बचाया जा सकता है।

कार्बनिक मलच की विशेषताएँ:

कार्बनिक मलच पौधों से प्राप्त पदार्थों से बनती है तथा शीघ्र ही भूमि में विघटित होकर मिट्टी के स्वास्थ्य को सुधारती है। इससे भारी काली मिट्टियों में वायु का संचार बढ़ता है तथा बलुई दोमट मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ती है। कार्बनिक मलच मिट्टी की संरचना की जल धारण क्षमता बढ़ती है। कार्बनिक मलच मिट्टी की संरचना में सुधार के साथ मृदा कणों के विन्यास भी सुधारती/स्थिर बनाये रखती है। बारिश की बूंदों में मिट्टी में जो ठोस बन जाता है, में भी सुधार होता है।

मिट्टी की क्षारियता या अम्लीयता को विभिन्न प्रकार के कार्बनिक मलच की सामग्रियों का उपयोग को विभिन्न प्रकार के कार्बनिक मलच की सामग्रियों का उपयोग कर बदल सकते हैं। उदाहरण के लिए अधिकांश कम्पोस्ट अम्लीय (पी.एच. मान-7 से अधिक) होते हैं। जिन्हे अम्लीय मिट्टियों में उपयोग करना उत्तम है, जबकि नीम की पत्तियां एवं अन्य वृक्ष की पत्तियां मलच के रूप में उपयोग करने से अम्लीयता बढ़ती है।

कार्बनिक मलच में पौध वृद्धि के लिए आवश्यक मुख्य और गौण दोनों ही पोषक तत्व पाये जाते हैं। परन्तु इसे उर्वरक का विकल्प नहीं समझना चाहिए, क्योंकि इससे मिलने वाले पोषक तत्व बहुत ही अल्प मात्रा में होते हैं। वास्तव में पौधों से प्राप्त जैव पदार्थों जैसे भूसा, टहनियां, लकड़ी का बुरादा एवं फसल अवशेषों में उँचे कार्बन एवं निम्न नत्रजन की मात्रा होती है। मलचिंग के पूर्व में फसलों को नत्रजनयुक्त उर्वरक देना अतिआवश्यक है। कार्बन नत्रजन अनुपात के कारण ये पदार्थ (उर्वरक) आसानी से सूक्ष्म जीवियों के द्वारा आसानी से विघटित हो जाते हैं। सूक्ष्म जीव भूमि से नत्रजन स्वयं को जीवित रखने के लिए उपयोग करते हैं।

अतः भूमि में नत्रजनयुक्त उर्वरक देना अतिआवश्यक है। अन्यथा नत्रजन की कमी के लक्षण पौधों पर परिलक्षित होंगे व दिखेंगे।

कार्बनिक मलच की मोटाई:

उपयोग किये जाने वाले जैविक पदार्थ के आधार पर मलच की मोटाई 5-6 से.मी. रखी जाती है तथा इस मोटाई पर मलच के मूलभूत उद्देश्य जैसे खरपतवार नियंत्रण, मिट्टी के नमी का संरक्षण तापमान नियंत्रण के उचित परिणाम मिलते हैं। इससे कम मोटाई के मलच संतोषप्रद कार्य नहीं करती है, जबकि अत्यधिक मोटी मलच के उपयोग से भूमि बिल्कूल भी नहीं सुख पायेगी, विशेषकर बारिश के दिनों में काली मिट्टी और नमी की मात्रा अत्यधिक होने से मिट्टी में वायु का संचार कम हो जाता है।

प्लास्टिक मलच की फसलों में सिंचाई:

प्लास्टिक मलच में टपक सिंचाई पद्धति अनुशासित है, इसके अतिरिक्त सिंचाई की अन्य विधियों के द्वारा भी सिंचाई का कार्य अच्छी तरह से संभव है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि मिट्टी का प्रकार क्या है। फसल कौन सी हैं, इसकी अवस्था क्या है। 6 इंच, 9 इंच तथा 12 इंच की गहराईयों पर टेनसियों मीटर या अन्य नमी को मापने वाले यंत्र को भी लगा देना चाहिए, ताकि सिंचाई कब करना है और कितनी करना है यह ज्ञात होता रहे, साथ ही घुलनशील खादों को भी सिंचाई जल के साथ डाला जा सके, जो इसे फर्टिगेशन कहते हैं। किसी भी स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति में मलच का उपयोग नहीं करना चाहिए।

प्लास्टिक मलच के प्रयोग की सीमायें:

- ✓ प्लास्टिक मलच का मूल्य जैविक मलच की तुलना में अधिक होता है। अतः व्यवसायिक फसल उत्पादन के लिए महँगी पड़ती है।
- ✓ काली प्लास्टिक मलच में तापमान के बढ़ जाने की स्थिति में कई छोटे पौधों को क्षति जैसे जलने इत्यादि की संभावना बढ़ जाती है।
- ✓ खड़ी फसल में उर्वरकों के टॉप ड्रेसिंग (छिटके जाने वाली उर्वरक) में भी दिक्कत आती है।
- ✓ कई जगहों पर चूहों के द्वारा मलच को काट दिया जाता है।
- ✓ प्लास्टिक मलच वातावरणीय प्रदूषण में भी सहायक होता है।
- ✓ कृषिगत क्रियाओं में मशीनों का उपयोग सीमित हो जाता है।
- ✓ प्लास्टिक मलच की पतली होने से एक मौसम से दूसरे मौसम तक नहीं चलती है। अतः कम टिकाऊ होता है।
- ✓ प्लास्टिक की पतली मलच में छिद्र कर खरपतवार बाहर आ जाते हैं।
- ✓ ये मलच पशुओं के लिए हानिकारक होते हैं।



बगीचों/फल वृक्षों/पेड़ों में प्लास्टिक मलच का प्रयोग करने का तकनीक:

- ✓ सर्वप्रथम यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि मलचिंग का क्षेत्रफल फल वृक्षों की कैनोपी (वृक्षों का छत्र) के क्षेत्रफल के बराबर हो।
- ✓ अब आवश्यकतानुसार प्लास्टिक मलच फिल्म को मुख्य रोल (बण्डल) से काट कर अलग कर लें।
- ✓ पेड़ के आस-पास की जगह को साफ सुथरी करे लें। अतः यह सुनिश्चित कर लें की कोई कंकड़ पत्थर या खरपतवार न रह गया हो।
- ✓ तत्पश्चात् मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरी कर हल्की सिंचाई कर दें, मलच बिछाने के पहले।
- ✓ मलचिंग क्षेत्रफल के बाहरी सतह पर हल्की सी खाई बना लें।
- ✓ मलच फिल्म से पेड़ के चारो तरफकी मिट्टी को ढक दें।
- ✓ मलच फिल्म के चारो कोनो पर अर्ध गोलाकार छिद्र कर दें, ताकि जल का मिट्टी की ओर गमन सुचारू रूप से हो सके।
- ✓ मलच फिल्म के किनारे 4-6 ईंच मिट्टी से ढक दें ताकि मलच हवा से उड़ न सके।
- ✓ कड़ी मिट्टी में सर्वप्रथम गहराई के मलचिंग क्षेत्रफल के चारो कोनो पर खाई कर दें।

पौधा लगाने के पहले प्लास्टिक मलच के प्रयोग हेतु तकनीक:

सर्वप्रथम फसल की आवश्यकतानुसार मलच को बिछाना चाहिए, तत्पश्चात् फसल की अनुसंशित दूरी के अनुसार मलच में छिद्र कर लें और अंत में बीज/पौध की बुआई/रोपाई करना चाहिए।

सब्जियों का अवधि फसल लगाने के लिए प्लास्टिक मलच के प्रयोग हेतु तकनीक:

- ❖ सब्जियों व कम समय की फसलों के लिए प्लास्टिक की बहुत पतली मलच फिल्म का उपयोग करते हैं।
- ❖ एक पंक्ति में फसल लगाने के लिए आवश्यकतानुसार मलच फिल्म की रील में से लेकर थान के रूप में फोल्ड (मोड़) लेते हैं।
- ❖ प्लास्टिक फिल्म के मध्य में बड़े व्यास के लोहे की पाईप को गर्म करके हथौड़े की सहायता से गोल छिद्र कर लेते हैं।

- ❖ मलच की चौड़ाई में एक किनारा मिट्टी में अच्छी तरह से दबाकर लम्बाई में खोलते हैं।
- ❖ मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरी कर आवश्यकतानुसार गोबर की सड़ी हुई खाद या कम्पोस्ट और उर्वरको के मिश्रण का मलच बिछाने के पूर्व डालते हैं।
- ❖ मलच को चारो तरफ से मिट्टी में अच्छी तरह दवा देते हैं।
- ❖ बीजों की बुआई सीधे प्लास्टिक के मलच फिल्म में बने छिद्रों में करते हैं।
- ❖ यदि पौधों की रोपाई करनी है तो सीधे मलच के छिद्र में पौध को रोपित कर देते हैं।

प्लास्टिक मलच के प्रयोग के लिए सावधानियां:

ऐसे समय में जब हवा तेज चल रही हो तब मलच न बिछाए। तेज हवा के कारण मलच फिल्म के उड़ने बिछाने से अधिक समय लगता है। साथ ही फिल्म के फटने की संभावना बनी रहती है।

मलच फिल्म को बिछाते समय इसे ज्यादा तनाव में न रखे, किन्तु ध्यान रहे कि मलच फिल्म और मिट्टी के बीच अंतर कम से कम हो।

मलच फिल्म के किनारे को लगभग 10-15 से.मी. की दूरी से ढक देना चाहिए। ताकि उस छिद्र में अधिक समय तक नमी बनी रहे।

मलच फिल्म को सर्वाधिक गर्मी के समय न बिछाएं, अर्थात् सुबह या शाम के समय ही बिछाएं।

एक बार उपयोग करने के बाद सावधानीपूर्वक मलच फिल्म को लपेटकर रखी गई फिल्म को दोबारा उपयोग में लाया जा सकता है। अतः यह सुनिश्चित करें कि फिल्म फटने न पायें।

इस प्रकार किसान/बागवान कई प्रकार के कार्बनिक एवं अकार्बनिक मलचों का उपयोग कर कम पानी तथा विपरीत परिस्थितियों में भी विभिन्न फसलों का गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।





किसान बाबूलाल अहिरवार का मशरूम की खेती से सफलता का सफर

डा. द्वारका- अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश
आदित्य कुमार शर्मा- कीटशास्त्र विभाग, बी.आर.डी. पी.जी. कालेज देवरिया, डी.डी.यू. जी.के.पी. विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश
शोभाराम ठाकुर- वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, एक्रिप परियोजना तिल फसल, कृषि महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश
श्रद्धा परमार- पीएच.डी. शोधार्थी, कीटशास्त्र विभाग, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर, मध्य प्रदेश
मनोज कुमार अहिरवार- कृषि विज्ञान केन्द्र प्रमुख, दमोह, मध्य प्रदेश
***निशा चढ़ार-** एम.एससी.(बाटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

किसान श्री बाबूलाल अहिरवार ग्राम बनगांव तहसील हटा जिला दमोह मध्य प्रदेश के निवासी है जिनकी आयु 60 वर्ष है। उन्होंने सिर्फ दूसरी कक्षा तक पढाई की है। श्री बाबूलाल जी का मुख्य व्यवसाय तो कृषि ही है लेकिन कृषि के अलावा यह केंचुआ पालन एवं मशरूम की खेती व मछली पालन से अतिरिक्त आय ग्रहण करते हैं। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति पहले की तुलना में बहुत ज्यादा मजबूत हुई है।

प्रारंभिक स्थिति में खेती के समय संघर्ष का दौर:

पहले की स्थिति में यदि खेती करें तो किसान श्री बाबूलाल अहिरवार का कर्ज बना रहता था एवं भूमि का आकार सीमित होने की वजह से उन्होंने कई प्रकार फसलों से आय होती थी बहुत कम रहती थी जिससे प्रमुख समस्याओं जैसे उत्पादन का कम होना, कर्ज अधिक होना, सिंचाई के पर्याप्त साधन एवं पानी की अनुपलब्धता, मार्केट की अनुपलब्धता, कीट एवं व्याधि का प्रकोप अधिक होना आदि समस्याओं से इनको जूझना पड़ता था।

बदलाव की सोच और प्रेरणा:

कृषि विज्ञान केंद्र, दमोह के मार्गदर्शन एवं वैज्ञानिक सलाह से प्रेरित होकर श्री बाबूलाल अहिरवार जी ने अपनी पारंपरिक खेती की पद्धतियों में व्यापक बदलाव लाने का महत्वपूर्ण निर्णय लिया। उन्होंने बताया कि खेती के प्रति उनकी सोच में परिवर्तन तथा आधुनिक एवं उन्नत कृषि तकनीकों को अपनाने की प्रेरणा उन्हें कृषि विज्ञान केंद्र, दमोह से प्राप्त हुई। केंद्र द्वारा समय-समय पर आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कृषक गोष्ठियों, प्रदर्शन इकाइयों तथा वैज्ञानिकों के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन से उन्होंने खेती की नई-नई तकनीकों को सीखने का अवसर प्राप्त किया। इन तकनीकों में उन्नत बीजों का चयन, संतुलित उर्वरक प्रबंधन, जैविक एवं एकीकृत कीट प्रबंधन, आधुनिक सिंचाई पद्धतियाँ, फसल चक्र अपनाना, समय पर बुवाई एवं वैज्ञानिक तरीके से फसल प्रबंधन जैसी विधियाँ शामिल थीं।

श्री अहिरवार जी ने इन सभी वैज्ञानिक तकनीकों को अपनी खेती में व्यावहारिक रूप से अपनाया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी





फसलों की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा उत्पादन लागत में कमी आई। पहले जहाँ खेती केवल पारंपरिक आजीविका का साधन मानी जाती थी, वहीं अब उन्होंने इसे एक लाभकारी एवं आधुनिक व्यवसाय के रूप में विकसित कर लिया है। उनकी मेहनत, नवाचारों को अपनाने की इच्छा तथा कृषि विज्ञान केंद्र से प्राप्त सतत तकनीकी सहयोग के कारण आज वे अपने क्षेत्र के अन्य किसानों के लिए भी प्रेरणा स्रोत बन चुके हैं। वे अन्य कृषकों को भी आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाने, वैज्ञानिक सलाह लेने तथा खेती को आत्मनिर्भर एवं लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

खेती में अपनाई तकनीक एवं नवाचार:

किसान श्री बाबूलाल अहिरवार द्वारा ऑयस्टर मशरूम का उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में किया जाता है। इसके आलावा केंचुआ पालन एवं मछली पालन, जैविक व प्राकृतिक खेती का भी कार्य करते हैं इससे किसान श्री बाबूलाल अहिरवार जी को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। उन्होंने अपने फार्म हाउस देशी नस्ल की 4 गाय एवं 2 भैंस भी एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत उन्होंने पाली हुई है जिससे डेयरी जैसी उत्पादों को भी मार्केट में सप्लाई करते हैं एवं मशरूम उत्पादन तो बहुत बड़ी मात्रा में कर रहे हैं। यदि हम बात करें वर्तमान समय की तकनीक की तो मोबाइल एप के माध्यम से ही अपना पूरे मशरूम की मार्केटिंग संभाल रहे हैं।

प्रशिक्षण और तकनीकी सहयोग:

कृषि विज्ञान केंद्र, दमोह द्वारा प्रदान किए गए तकनीकी प्रशिक्षण एवं वैज्ञानिक मार्गदर्शन ने किसान श्री बाबूलाल अहिरवार जी के कृषि जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने का कार्य किया। उन्होंने बताया कि आधुनिक खेती की ओर अग्रसर होने तथा समेकित कृषि प्रणाली को सफलतापूर्वक अपनाने में कृषि विज्ञान केंद्र, दमोह की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। केंद्र द्वारा आयोजित विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कृषक संगोष्ठियों, फील्ड प्रदर्शन एवं तकनीकी परामर्श के माध्यम से उन्हें उन्नत कृषि तकनीकों, फसल प्रबंधन, जैविक खेती, एकीकृत पोषक तत्व

प्रबंधन, कीट एवं रोग नियंत्रण, जल संरक्षण तथा आधुनिक कृषि उपकरणों के उपयोग संबंधी महत्वपूर्ण जानकारीयाँ प्राप्त हुईं।

इसके अतिरिक्त जिला स्तर पर संचालित आत्मा, नाबार्ड तथा विभिन्न गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं जागरूकता अभियानों से भी उन्होंने समेकित कृषि प्रणाली से संबंधित अनेक व्यवहारिक एवं तकनीकी जानकारीयाँ प्राप्त कीं। इन प्रशिक्षणों के माध्यम से उन्होंने खेती के साथ पशुपालन, बागवानी, जैविक खाद निर्माण, जल प्रबंधन तथा बहुआयामी कृषि गतिविधियों को एक साथ जोड़ने की विधियों को सीखा।

श्री बाबूलाल अहिरवार जी ने इन सभी प्रशिक्षणों एवं तकनीकी सहयोग से प्राप्त ज्ञान को अपनी खेती में प्रभावी रूप से लागू किया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी कृषि उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई, लागत में कमी आई तथा आय के नए स्रोत विकसित हुए। आज उन्होंने खेती को केवल पारंपरिक कार्य न मानकर एक लाभकारी एवं टिकाऊ व्यवसाय के रूप में स्थापित कर लिया है। उनकी सफलता इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है कि यदि किसान वैज्ञानिक तकनीकों, प्रशिक्षण एवं संस्थागत सहयोग का सही उपयोग करें, तो खेती को अधिक लाभकारी, आत्मनिर्भर एवं आधुनिक बनाया जा सकता है।

उत्पादन लागत और आय में बदलाव:

किसान श्री बाबूलाल अहिरवार जी के घर कर्ज बना रहता था लेकिन अब उनका कम से कम दो से ढाई लाख प्रति एकड़ तक आय प्राप्त हो जाती है और स्थानीय बाजारों की हम बात करें तो वहां पर इनके मशरूम एवं अन्य उत्पादों की मांग बहुत अधिक रहती है। इसके अलावा पहले की तुलना में किसान श्री बाबूलाल अहिरवार जी के जोखिम में भी बहुत कमी आई है। उनका उत्पादित मशरूम 200 रूपए किलोग्राम इनके पास आकर लोग लेकर जाते हैं और यदि हम बाजार की बात करें तो बाजार में 250 रूपए प्रति किलोग्राम तक बिक जाता है।

प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन:

मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण के क्षेत्र में भी श्री बाबूलाल अहिरवार जी ने उल्लेखनीय कार्य किया है। उन्होंने मशरूम उत्पादन को केवल ताजा उत्पाद बेचने तक सीमित न रखकर उससे विभिन्न प्रकार के मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार करने की दिशा में भी प्रयास किए हैं। मशरूम से तैयार किए जाने वाले पापड़, सूखे मशरूम उत्पाद तथा मुर्गी आहार (पोल्ट्री फीड) से संबंधित सामग्री का निर्माण कर वे उन्हें सीधे स्थानीय बाजारों एवं ग्राहकों तक पहुंचाते हैं। इस प्रकार के प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन से न केवल उत्पाद की उपयोगिता एवं मांग में वृद्धि हुई है, बल्कि उन्हें अतिरिक्त आय प्राप्त करने का अवसर भी मिला है।



उन्होंने यह समझा कि यदि कृषि एवं उससे जुड़े उत्पादों को केवल कच्चे रूप में बेचने के बजाय वैज्ञानिक तरीके से प्रसंस्कृत कर बाजार में प्रस्तुत किया जाए, तो उनकी गुणवत्ता, भंडारण क्षमता तथा बाजार मूल्य में कई गुना वृद्धि की जा सकती है। इसी सोच के साथ उन्होंने मशरूम आधारित उत्पादों को आकर्षक एवं उपयोगी रूप में तैयार कर विपणन करना प्रारंभ किया। उनके द्वारा तैयार किए गए उत्पाद स्थानीय उपभोक्ताओं के बीच लोकप्रिय हो रहे हैं, जिससे उन्हें नियमित आय प्राप्त हो रही है।

श्री बाबूलाल अहिरवार जी का यह प्रयास ग्रामीण स्तर पर स्वरोजगार, लघु उद्यम एवं कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देने का उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि आधुनिक कृषि के साथ प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन को जोड़कर किसान अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं तथा खेती को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ व्यवसाय बना सकते हैं।

सामाजिक और पारिवारिक स्थिति पर प्रभाव:

पहले जहां परिवार के सदस्य मेट्रोपॉलिटन सिटी में जाकर काम करते थे और रोजगार की कमी के कारण परिवार को पलायन करना पड़ता था वहीं अब उन्नत तकनीकों को अपने समेकित कृषि फार्मिंग के माध्यम से आर्थिक स्थिति में सुधार होने के कारण बच्चों की शिक्षा बहुत अच्छी चल रही है एवं दूसरे किसानों के लिए वहीं प्रेरणा का स्रोत बने हुए हैं एवं रोजगार का सृजन स्वयं के द्वारा गांव में ही कर लिया गया है और अब परिवार के पलायन की स्थिति खत्म हो गयी है।

सम्मान, पुरस्कार और पहचान:

बात करें हम सम्मान या पुरस्कार की तो जिला, राज्य या राष्ट्रीय स्तर पर किसान श्री बाबूलाल अहिरवार जी को किसी प्रकार का कोई सम्मान या कोई पुरस्कार अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है, यदि हम बात करें पहचान की तो मीडिया कवरेज के माध्यम से ही इनको ख्याति प्राप्त हुई है।

भविष्य की योजनाएं:

किसान श्री बाबूलाल अहिरवार जी ने बताया कि वे भविष्य में मशरूम उत्पादन के साथ-साथ केंचुआ पालन (वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन) एवं मछली पालन को भी बड़े स्तर पर विकसित करने की योजना बना रहे हैं। उनका उद्देश्य केवल पारंपरिक खेती तक सीमित न रहकर समेकित कृषि प्रणाली को अपनाते हुए कृषि से होने वाली आय को दुगुना से चार गुना तक बढ़ाना है। उनका मानना है कि वर्तमान समय में केवल एक ही फसल पर निर्भर रहना किसानों के लिए पर्याप्त लाभकारी नहीं है, इसलिए कृषि के साथ अन्य सहायक व्यवसायों को जोड़ना आवश्यक हो गया है।

श्री अहिरवार जी के अनुसार मशरूम उत्पादन, केंचुआ पालन एवं मछली पालन एक-दूसरे के पूरक व्यवसाय हैं, जिनके माध्यम से कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। केंचुआ पालन से प्राप्त जैविक खाद का उपयोग वे अपनी खेती एवं मशरूम उत्पादन इकाइयों में करना चाहते हैं, जिससे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ेगी तथा रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होगी। वहीं मछली पालन के माध्यम से अतिरिक्त आय एवं पोषण सुरक्षा दोनों सुनिश्चित किए जा सकते हैं।

उन्होंने बताया कि वैज्ञानिक तकनीकों एवं प्रशिक्षण के माध्यम से इन गतिविधियों को बड़े स्तर पर अपनाकर ग्रामीण युवाओं एवं अन्य किसानों के लिए भी रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं। उनकी सोच आधुनिक, आत्मनिर्भर एवं बहुआयामी कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने वाली है। श्री बाबूलाल अहिरवार जी का यह दृष्टिकोण इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है कि यदि किसान कृषि के साथ सहायक उद्यमों को जोड़ें, तो खेती को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है।

अन्य किसानों के लिए संदेश:

श्री बाबूलाल अहिरवार जी का कहना है कि यदि वैज्ञानिक तौर पर खेती करते हैं, अच्छी तकनीक से कृषि विज्ञान केन्द्रों में सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं की जानकारी या सरकार द्वारा नियुक्त जो भी विषय विशेषज्ञ हैं, सरकारी संस्था में उनसे मिलकर आप खेती करते हैं तो खेती निश्चित रूप से लाभ का धंधा बन सकती है।





गुणवत्तायुक्त बीज का महत्व

डा० अभयदीप गौतम- विषय वस्तु विशेषज्ञ (जी०पी०बी०)

श्री रितेश सिंह गंगवार- विषय वस्तु विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)

डा० चंदन सिंह- विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान)

कृषि विज्ञान केन्द्र, चन्दौली

गुणवत्तायुक्त बीजों का महत्व:

- पराशर (400BC) के मतानुसार अच्छी उपज, उत्तम बीज से ही उत्पन्न होती है मनु (200BC)के कथानुसार अच्छा बीज, अच्छी भूमि में अत्यधिक उपज देता है।
- बीज, फसल उत्पादन में प्रयुक्त विभिन्न कारकों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है, जोकि उत्प्रेरक का कार्य करने के अतिरिक्त अन्य कारकों के प्रभाव को क्रियाशील करने में अहम भूमिका निभाते हैं।
- गुणवत्तायुक्त बीज के प्रयोग से उचित अंकुरण प्रतिशत, कीट एवं व्याधियों से मुक्ति के साथ अन्य जैविक तथा अजैविक वातावरणीय कारकों के प्रति सहनशीलता में वृद्धि के साथ अधिक उत्पादकता प्राप्त की सकती है।

उत्तम बीज के गुण:

- बीज उन्नत प्रजाति का हो।
- आनुवंशिक शुद्धता:** बीज आनुवंशिक रूप से 100 प्रतिशत सुद्ध हो।
- भौतिक शुद्धता:** बीज में अन्य फसल व खरपतवारों के बीज एवं कंकड़, मिट्टी आदि न हो।
- अंकुरण क्षमता:** बीज की अंकुरण क्षमता अधिक हो जो कि फसल के अनुसार निर्धारित की गयी हो।

- ✓ **उचित नमी:** बीज में उचित मात्रा में नमी हो, जिससे अन्य व्याधियों का प्रभाव न पड़े।
- ✓ **समरूपता:** बीज रंग, रूप एवं आकार में सामान हो
- ✓ **बीज स्वास्थ्य:** बीज स्वस्थ हो एवं बीज जनित रोगों से मुक्त हो। बीज बीमारियों तथा कीड़ों से सुरक्षित हो, अर्थात वह अच्छी तरह से उपचारित किया गया हो।

बीज के वर्ग/श्रेणियों



नाभिकीय बीज (Nucleus Seed)

आनुवंशिक शुद्धता 100 प्रतिशत

इसका उत्पादन किस्म को विकसित करने वाले प्रजनक वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है, लेबल/टैग नहीं होता है।



प्रजनक बीज (Breeder Seed)

आनुवंशिक शुद्धता 100 प्रतिशत

इसका उत्पादन किस्म को विकसित करने वाले प्रजनक या संस्थान जैसे कृषि विश्व विद्यालयों या भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों के द्वारा किया जाता है। इसका प्रमाणन प्रमाणीकरण संस्था द्वारा नहीं किया जाता है। बल्कि इसकी गुणवत्ता को एक मोनिटरिंग टीम द्वारा निरीक्षण



किया जाता है। लेबल का रंग सुनहरा पीला (गोल्डेन येलो) व आकार 12 सेमी × 6 सेमी होता है।



आधार बीज

(Foundation Seed)

आनुवंशिक शुद्धता 99 प्रतिशत

यह प्रजनक बीज के गुणन से प्राप्त होता है।

इसका उत्पादन कृषि विश्वविद्यालयों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों, सरकारी कर्मों तथा बीज निगम द्वारा चयनित प्रशिक्षित किसानों के प्रक्षेत्रों पर कराया जाता है।

लेबल का रंग सफेद व आकार 15×7.5 सेमी होता है।



प्रमाणित बीज

(Certified Seed)

आनुवंशिक शुद्धता 98 प्रतिशत

यह आधारीय बीज के गुणन से प्राप्त होता है।

इसका उत्पादन बीज प्रमाणीकरण संस्था के निरीक्षण में होता है, इसकी गुणवत्ता की जाँच प्रमाणीकरण संस्था द्वारा की जाती है, इसलिए इसे प्रमाणित बीज कहते हैं।

लेबल का रंग नीला (अजोर ब्लू) व आकार 15 सेमी 7.5 सेमी होता है।



सत्यापित बीज

(Labelled Seed)

आनुवंशिक शुद्धता 98 प्रतिशत

उत्पादन आधारीय/प्रमाणित बीज से होता है परन्तु इस पर प्रमाणिकरण संस्था का टैग नहीं लगा होता है इसकी भौतिक शुद्धता एवं अंकुरण क्षमता के प्रति उत्पादक स्वयं जिम्मेदार होता है।

लेबल का रंग हरा होता है।

बीज खरीदते समय ध्यान देने योग्य बातें

- ✓ हमेशा उच्च गुणवत्तायुक्त प्रमाणित किस्म का बीज विश्वसनीय संस्थान से ही खरीदें।
- ✓ हमेशा उपयुक्त टैग युक्त बैग का बीज खरीदें तथा कटे-फटे टैग वाले या खुले हुए बैग न खरीदें।
- ✓ प्रमाणिकरण की बैधता अवधि समाप्त होने के उपरांत बीजों को न खरीदें और बीज विक्रय संस्था से पक्की रसीद अवश्य से लेना चाहिए।

- ✓ फसल अथवा सब्जियों की उसी किस्म का बीज ही खरीदें जो आपके कृषि के लिए संतुत/अनुकूल हो। संकर प्रजाति के बीजों को प्रत्येक वर्ष बदलना ना भूलें।

प्रमाणित बीज उत्पादन की प्रक्रिया

कृषक या संस्था जो प्रमाणित बीज उत्पादन करना चाहते हैं उन्हें अपने क्षेत्र के बीज प्रमाणीकरण संस्था से निर्धारित फार्म भर कर फीस के साथ बीज प्रमाणीकरण के लिए आवेदन करना चाहिए।

- ❖ आवेदन के पश्चात् बीज प्रमाणीकरण संस्था यह सत्यापित करती है कि बीज किस्म प्रमाणीकरण के योग्य है या नहीं क्योंकि केवल अधिसूचित किस्मों का ही प्रमाणीकरण किया जाता है।
- ❖ आवेदन के साथ जमा किये जाने वाले आवेदन शुल्क के अतिरिक्त प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति के बाद उत्पादक को अन्य शुल्क आदि जमा करने होते हैं।
- ❖ प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु आधारीय बीज लगाया जाता है व उन्नत बीज के उत्पादन हेतु उच्च गुणवत्ता वाले शुद्ध व चिन्हित किस्मों को लगाना चाहिए।
- ❖ बीज के टैग को सम्भाल कर रखना चाहिए। बीज का उद्गम स्थान एवं श्रेणी का पता रहे ता आवेदन के समय उस किस्म का उद्गम स्थान एवं पूर्ण विवरण साथ संलग्न करें।
- ❖ बीज उत्पादन के लिए साफ एवं खर-पतवार रहित स्थान का चयन करें।
- ❖ बीज की बुआई के पूर्व बीजाई उपकरणों को अवश्य साफ कर लेना चाहिए।
- ❖ कटाई के पूर्व प्रक्षेत्र का निरीक्षण राज्य बीज प्रमाणीकरण संस्था से अवश्य करा लेना चाहिए।
- ❖ कटाई एवं ढुलाई के उपकरण तथा भंडार गृह को कटाई के पूर्व अवश्य साफ कर लेना चाहिए।
- ❖ बीज परीक्षण हेतु नमूने बीज परीक्षण प्रयोगशाला में भेजना चाहिए।
- ❖ बीज परीक्षण के उपरांत टैग हेतु राज्य बीज प्रमाणिकरण संस्था से संपर्क करना चाहिए।
- ❖ प्रयोगशाला क्षरा पूर्व परीक्षण एवं बोरों में टैग लग जाने के उपरान्त प्रमाणीकरण प्रक्रिया सम्पूर्ण मानी जाती है।





बीजोपचार एक लाभ अनेक: बीजोपचार क्या है ,कैसे करेंगे एवं क्यों महत्वपूर्ण है?

चंचल भार्गव, डॉ. आर. के. झाड़े
कृषि विज्ञान केन्द्र, चंदनगांव, छिंदवाड़ा

बहुत सारी फसलों के लिए नर्सरी तैयार करने की आवश्यकता होती है वही कुछ की सीधी बुवाई करते है। ऐसे में उन्हे पहले से कुछ जानकारी का होना आवश्यक है। बीज अनेक रोगाणु जैसे कि कवक, जीवाणु, विषाणु व सूत्रकृमि आदि के वाहक होते हैं, जो भंडारित बीज एवं खेत में बोये गए बीज को नुकसान पहुंचाते हैं। इससे बीज की गुणवत्ता एवं अंकुरण के साथ-साथ फसल की बढ़वार, रोग से लड़ने की क्षमता, उत्पादकता एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए बीज भंडारण के पूर्व अथवा बोवाई के पूर्व जैविक या रासायनिक अथवा दोनों के द्वारा बीज का उपचार किया जाना आवश्यक है। बीज उपचार से तात्पर्य बीजों पर फफूंदनाशी, कीटनाशक या दोनों के संयोजन से है, ताकि बीज-जनित या मिट्टी-जनित रोगजनक जीवों और भंडारण कीड़ों से उन्हें मुक्त किया जा सके। बीजोपचार को परिभाषित करना हो तो एक लाइन में कहा जा सकता है की बीजोपचार एक लाभ अनेका बीज उपचार करने से निम्नलिखित लाभों को प्राप्त किया जाता है-

- 1) पौधों की बीमारियों के प्रसार को रोकता है।
- 2) बीज को सड़न और अंकुरों के झुलसने से बचाता है।
- 3) अंकुरण में सुधार होता है एवं पौध एक समान होते है।
- 4) भंडारण कीड़ों से सुरक्षा प्रदान करता है।
- 5) मिट्टी के कीड़ों को नियंत्रित करता है।
- 6) कम दवा का प्रयोग करके बहुत अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है

बीज उपचार के प्रकार

i) बीज विसंक्रमण

बीज विसंक्रमण से तात्पर्य फफूंद बीजाणुओं के उन्मूलन से है जो बीज आवरण के भीतर या अधिक गहरे बैठे ऊतकों में स्थापित हो गए

हैं। प्रभावी नियंत्रण के लिए, कवकनाशी उपचार वास्तव में मौजूद कवक को मारने के लिए बीज में प्रवेश करना चाहिए या उन सतही जीवों के विनाश से है जिन्होंने बीज की सतह को दूषित कर दिया है लेकिन बीज की सतह को संक्रमित नहीं किया है। धूल, घोल या तरल के रूप में लगाए गए रासायनिक डुबकी, सोख, कवकनाशी सफल पाए गए हैं।

ii) बीज संरक्षण

बीज संरक्षण का उद्देश्य बीज और युवा पौध को मिट्टी में ऐसे जीवों से बचाना है जो अंकुरण से पहले बीज के क्षय का कारण बन सकते हैं। निम्नलिखित परिस्थितियों में अवश्य बीज का उपचार किया जाना चाहिए।

1) घावग्रस्त बीज- बीज के बीज के आवरण में किसी भी प्रकार की टूट-फूट कवक के लिए बीज में प्रवेश करने और या तो इसे मारने या इससे उत्पन्न होने वाले अंकुर को जगाने का एक उत्कृष्ट अवसर देता है। संयोजन और थ्रेसिंग के संचालन के दौरान, या अत्यधिक ऊंचाई से गिराए जाने से बीजों को यांत्रिक चोट लगती है। वे मौसम या अनुचित भंडारण से भी घायल हो सकते हैं।

2) रोगग्रस्त बीज- बीज फसल के समय भी रोग जीवों से संक्रमित हो सकता है, या प्रसंस्करण के दौरान संक्रमित हो सकता है, यदि दूषित मशीनरी पर संसाधित किया जाता है या दूषित कंटेनर या गोदामों में संग्रहित किया जाता है।

3) अवांछनीय मिट्टी की स्थिति- बीज कभी-कभी प्रतिकूल मिट्टी की स्थिति जैसे ठंडी और नम मिट्टी, या अत्यंत शुष्क मिट्टी में लगाए जाते हैं। ऐसी प्रतिकूल मिट्टी की स्थिति कुछ कवक बीजाणुओं के विकास और



विकास के लिए अनुकूल हो सकती है जिससे वे बीजों पर हमला कर उन्हें नुकसान पहुंचा सकते हैं।

4) रोगमुक्त बीज- बिना किसी आर्थिक परिणाम से लेकर गंभीर आर्थिक परिणामों तक के रोग जीवों द्वारा बीज हमेशा संक्रमित होते हैं। बीज उपचार से बीमारियों, मिट्टी से पैदा होने वाले जीवों के खिलाफ एक अच्छा बीमा मिलता है और इस प्रकार कमजोर बीजों को सुरक्षा प्रदान करता है जिससे वे अंकुरित हो सकते हैं और पौधे पैदा कर सकते हैं।

बीजों के उपचार में उपयोग किए जाने वाले अधिकांश उत्पाद मनुष्यों के लिए हानिकारक होते हैं, लेकिन वे बीजों के लिए भी हानिकारक हो सकते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए अत्यधिक देखभाल की आवश्यकता है कि उपचारित बीज को कभी भी मानव या पशु भोजन के रूप में उपयोग नहीं किया जाता है। इस संभावना को कम करने के लिए, उपचारित बीज को स्पष्ट रूप से खतरनाक होने के रूप में लेबल किया जाना चाहिए। किसी भी हाल में उपचारित बीज का उपयोग खाने में नहीं करना चाहिए। बीज को सही मात्रा में उपचारित करने के लिए भी सावधानी बरतनी चाहिए। बहुत अधिक या बहुत कम सामग्री लागू करना उतना ही हानिकारक हो सकता है जितना कि कभी इलाज न करना। कुछ सांद्र तरल उत्पादों के साथ बीज उपचार करने पर बहुत अधिक नमी वाले बीज चोट के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। यदि बीजों को जीवाणु कल्चर से भी उपचारित करना है तो बीजोपचार करने का क्रम इस प्रकार होगा सर्वप्रथम कवकनाशी, कीटनाशी इसके बाद कल्चर से उपचारित करना चाहिए।

बीजों को पोषक तत्वों, विटामिनों और सूक्ष्म पोषक तत्वों से उपचार

बीजों को पोषक तत्वों, विटामिनों और सूक्ष्म पोषक तत्वों आदि से भिगोना/उपचार करना- धान में अंकुरण और शक्ति क्षमता में सुधार के लिए बीजों को 1% KCL घोल में 12 घंटे तक भिगोया जा सकता है। चारा फसलों के बीजों में बेहतर अंकुरण और शक्ति क्षमता में सुधार के लिए बीजों को NaCl_2 (1%) या KH_2PO_4 (1%) में 12 घंटे तक भिगोया जा सकता है। दलहनो के बीजों में अच्छा अंकुरण और शक्ति क्षमता में सुधार के लिए बीजों को ZnSO_4 , MgSO_4 और MnSO_4 100 ppm घोल में 4 घंटे तक भिगोया जा सकता है।

बीजोपचार कैसे करें?

''बीजोपचार ड्रम'' में बीज और दवा डालकर ढक्कन बंद करके हैंडल द्वारा ड्रम को 5 से 10 मिनट तक घुमाया जाता है। इस विधि से एक बार में 25-35 किलो ग्राम बीज उपचार किया जा सकता है। बीज

उपचार की पारम्परिक विधि ''घड़ा विधि'' है। इस विधि से बीज और दवा को घड़ा में निश्चित मात्रा में डालकर घड़े के मुंह को पालीथिन से बांधकर 10 मिनट तक अच्छी तरह से हिलाया जाता है। थोड़ी देर बाद घड़े का मुंह खोलकर उपचारित बीज को अलग बोरे में रखा जाता है। बीज उपचार की अन्य विधि ''प्लास्टिक बोरा'' विधि है। इस विधि में बीज और दवा को डालकर बोरे के मुंह को रस्सी से बांध दिया जाता है और 10 मिनट तक अच्छी तरह हिलाने के बाद जब दवा की परत बीज के ऊपर अच्छी तरह लग जाये तब बीज को भंडारित अथवा बुआई की जाती है। बीज का उपचार रासायनिक विधि से भी किया जाता है। इस विधि में 10 लीटर पानी में फफुंदनाशक/कीटनाशक की निर्धारित मात्रा 2 से 2.5 ग्राम प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर गन्ना, आलू, अन्य कंद वाले फसल को 10 मिनट तक घोल में डुबाकर बुआई की जाती है। धान बीजोपचार 15 प्रतिशत नमक घोल से किया जाता है। इस विधि में साधारण नमक के 15 प्रतिशत घोल में बीज को डुबोया जाता है, जिससे कीट से प्रभावित बीज, खरपतवार के बीज ऊपर तैरने लगते हैं और स्वस्थ एवं हष्ट पुष्ट बीज नीचे बैठ जाता है, जिसे अलग कर साफ पानी से धोकर भंडारित करें अथवा सीधे खेत में बुआई करें। बीज जनित बीमारी जैसे उकटा, जड़गलन, आदि के उपचार के लिए जैविक फफुंदनाशी जैसे-ट्राइकोडर्मा या स्यूडोमोनास से 5 से 10 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करें, इससे उकटा अथवा जड़ गलन से फसल प्रभावित नहीं होती है। बीजोपचार के लाभ -बीज एवं मृदा जनित रोग जैसे- ब्लास्ट, उकटा, जड़ गलन आदि बीमारी से फसल प्रभावित नहीं होती है। बीजोपचार करने से बीज के उपर एक दवाई की परत चढ़ जाती है जो बीज को बीज अथवा मृदा जनित सूक्ष्म जीवों के नुकसान से बचाती है। बीज की अंकुरण क्षमता को बनाये रखने के लिये बीजोपचार जरूरी होता है, क्योंकि बीज उपचार करने से कीड़ों अथवा बीमारियों का प्रकोप भंडारित बीज में कम होता है। बुआई पूर्व कीटनाशी से बीज का उपचार करने पर मृदा में उपस्थित हानिकारक कीटों से बीज की सुरक्षा होती है। उपचारित बीज की बुआई करने से बीज की मात्रा कम लगती है एवं बीज स्वस्थ होने के कारण उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि होती है। कृषि विज्ञान केन्द्र एवं भारत सरकार दोनों का ही प्रयास है कि अधिक से अधिक किसान बुआई पूर्व अवश्य बीजों का उपचार करें, इसके लिए सरकार के स्तर से भी जागरूकता अभियान चला कर उन्हें बीजोपचार से होने वाले लाभ से अवगत कराया जा रहा है।





सुपरफूड मखाना: सेहत और स्वाद का परफेक्ट कॉम्बिनेशन

आशीष राय , धीरेन्द्र कुमार, संजय कुमार
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, झंझारपुर, मधुबनी, बिहार
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

भारत में पारंपरिक खाद्य पदार्थों की समृद्ध परंपरा रही है। हमारे गांवों और खेतों से निकलने वाले कई ऐसे खाद्य पदार्थ हैं, जो न केवल स्वादिष्ट होते हैं बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी बेहद लाभकारी माने जाते हैं। इन्हीं में से एक है मखाना, जिसे आज पूरी दुनिया “सुपरफूड” के नाम से जानने लगी है। बिहार की धरती पर विशेष रूप से उगाया जाने वाला मखाना अब देश ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी अपनी पहचान बना चुका है। पौष्टिकता, स्वाद और स्वास्थ्य लाभों से भरपूर मखाना आधुनिक जीवनशैली में हेल्दी स्नैक के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है।

मखाना को अंग्रेजी में “Fox Nut” या “Lotus Seed” कहा जाता है। यह मुख्य रूप से तालाबों और जलाशयों में उगने वाले पौधे से प्राप्त होता है। भारत में मखाना उत्पादन का सबसे बड़ा केंद्र बिहार है, जहां के मिथिलांचल क्षेत्र में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। यहां के किसानों के लिए मखाना केवल एक फसल नहीं, बल्कि आय और पहचान का महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है।

पोषण से भरपूर सुपरफूड

मखाना को सुपरफूड इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें शरीर के लिए जरूरी कई पोषक तत्व मौजूद होते हैं। इसमें प्रोटीन, कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए

जाते हैं। साथ ही इसमें कैलोरी कम और फाइबर अधिक होता है, जो इसे स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों के लिए आदर्श खाद्य पदार्थ बनाता है। आजकल लोग जंक फूड और तली-भुनी चीजों की जगह हेल्दी स्नैक्स की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। ऐसे में मखाना एक बेहतरीन विकल्प बनकर उभरा है। इसे हल्का भूनकर या कम मसालों के साथ खाने से स्वाद भी मिलता है और शरीर को जरूरी पोषण भी।

वजन घटाने में सहायक

मखाना वजन नियंत्रित रखने में काफी मददगार माना जाता है। इसमें कैलोरी कम और फाइबर अधिक होता है, जिससे लंबे समय तक पेट भरा हुआ महसूस होता है। यही कारण है कि जो लोग वजन कम करना चाहते हैं, वे अपनी डाइट में मखाना को शामिल कर रहे हैं।

फास्ट फूड और अधिक तेल वाले स्नैक्स की तुलना में मखाना कहीं ज्यादा हेल्दी विकल्प है। शाम की भूख मिटाने के लिए भुना हुआ मखाना स्वादिष्ट और पौष्टिक दोनों साबित होता है। फिटनेस प्रेमियों और जिम जाने वाले युवाओं के बीच इसकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है।

हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी

मखाना हृदय को स्वस्थ रखने में भी मदद करता है। इसमें सोडियम कम और पोटैशियम अधिक मात्रा में पाया जाता है, जो रक्तचाप



को नियंत्रित रखने में सहायक होता है। नियमित रूप से सीमित मात्रा में मखाना खाने से दिल संबंधी समस्याओं का खतरा कम हो सकता है। इसके अलावा इसमें मौजूद एंटीऑक्सीडेंट शरीर में फ्री रेडिकल्स को कम करने में मदद करते हैं, जिससे शरीर की कोशिकाएं स्वस्थ रहती हैं। डॉक्टर भी हेल्दी स्नैक के रूप में मखाना खाने की सलाह देते हैं।

मधुमेह रोगियों के लिए बेहतर विकल्प

मखाना का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, यानी यह रक्त में शर्करा के स्तर को तेजी से नहीं बढ़ाता। इसलिए मधुमेह रोगियों के लिए यह एक सुरक्षित और पौष्टिक स्नैक माना जाता है। बिना ज्यादा तेल और मसालों के भुना हुआ मखाना डायबिटीज मरीजों के लिए काफी लाभकारी हो सकता है।

हालांकि किसी भी खाद्य पदार्थ का सेवन संतुलित मात्रा में ही करना चाहिए। चिकित्सकीय सलाह के अनुसार मखाना को आहार में शामिल करना बेहतर होता है।

हड्डियों और मांसपेशियों को मजबूती

कैल्शियम और मैग्नीशियम से भरपूर मखाना हड्डियों को मजबूत बनाने में सहायक है। बच्चों, महिलाओं और बुजुर्गों के लिए इसका सेवन विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है। बढ़ती उम्र में हड्डियों की कमजोरी और जोड़ों के दर्द जैसी समस्याओं से बचाव में भी यह मदद कर सकता है।

इसके अलावा इसमें मौजूद प्रोटीन शरीर की मांसपेशियों को मजबूत बनाने में सहायक होता है। यही वजह है कि खिलाड़ी और फिटनेस के प्रति जागरूक लोग भी इसे अपनी डाइट में शामिल करते हैं।

व्रत और पारंपरिक भोजन का हिस्सा

भारत में मखाना का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व भी है। नवरात्र, एकादशी और अन्य व्रतों में लोग मखाना का सेवन बड़े चाव से करते हैं। मखाना की खीर, भुना मखाना और मखाना नमकीन लंबे समय से भारतीय रसोई का हिस्सा रहे हैं।

आजकल बाजार में कई तरह के फ्लेवर्ड मखाना उपलब्ध हैं, जैसे टमाटर फ्लेवर, पुदीना फ्लेवर, चीज फ्लेवर और मसाला मखाना। इससे युवाओं और बच्चों में इसकी मांग तेजी से बढ़ी है।

किसानों की आय बढ़ाने में मददगार

मखाना केवल स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने में भी अहम भूमिका निभा रहा है। बिहार के दरभंगा, मधुबनी, पूर्णिया, कटिहार और सुपौल जैसे जिलों में हजारों किसान मखाना उत्पादन से जुड़े हुए हैं।

पिछले कुछ वर्षों में मखाना की मांग देश और विदेश में तेजी से बढ़ी है। इसके कारण किसानों को बेहतर बाजार और अच्छे दाम मिलने लगे हैं। केंद्र और राज्य सरकारें भी मखाना उत्पादन और प्रसंस्करण को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं चला रही हैं।

बिहार के मखाना को जीआई टैग (Geographical Indication Tag) मिलने के बाद इसकी पहचान और मजबूत हुई है। इससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी इसकी मांग बढ़ी है। आज मखाना किसानों के लिए नकदी फसल के रूप में उभर रहा है।

रोजगार और उद्योग की नई संभावनाएं

मखाना से जुड़े प्रसंस्करण उद्योग भी तेजी से विकसित हो रहे हैं। पैकेजिंग, फ्लेवरिंग और निर्यात के कारण युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर पैदा हुए हैं। कई स्टार्टअप और खाद्य कंपनियां अब मखाना आधारित उत्पादों को बाजार में उतार रही हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला स्वयं सहायता समूह भी मखाना प्रसंस्करण और पैकेजिंग से जुड़कर आत्मनिर्भर बन रही हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिल रही है।

कैसे करें सेवन?

मखाना का सेवन कई तरीकों से किया जा सकता है। इसे हल्का घी या तेल डालकर भून सकते हैं। स्वाद के लिए इसमें हल्का नमक, काली मिर्च या चाट मसाला मिलाया जा सकता है। इसके अलावा मखाना की खीर, सब्जी और नमकीन भी काफी पसंद की जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार सुबह या शाम के समय सीमित मात्रा में मखाना खाना अधिक लाभकारी माना जाता है। अधिक मात्रा में किसी भी चीज का सेवन नुकसानदायक हो सकता है, इसलिए संतुलन जरूरी है।

निष्कर्ष

मखाना वास्तव में स्वाद और सेहत का परफेक्ट कॉम्बिनेशन है। यह केवल एक पारंपरिक खाद्य पदार्थ नहीं, बल्कि आधुनिक जीवनशैली के लिए एक बेहतरीन सुपरफूड बन चुका है। पोषण से भरपूर होने के साथ-साथ यह किसानों की आय बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज जब लोग हेल्दी लाइफस्टाइल की ओर बढ़ रहे हैं, तब मखाना जैसे देसी सुपरफूड की अहमियत और बढ़ जाती है। यदि इसे नियमित और संतुलित मात्रा में आहार का हिस्सा बनाया जाए, तो यह शरीर को ऊर्जा, पोषण और बेहतर स्वास्थ्य देने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। बिहार का यह अनमोल उत्पाद अब दुनिया भर में भारतीय कृषि और पारंपरिक खानपान की नई पहचान बनता जा रहा है।





दूध/ डेरी व्यवसाय से मूल्य संवर्धन के उपाय

प्रियल तिवारी - टिचिंग असिस्टेंट, सुभाष कुमार वर्मा - सहायक प्राध्यापक
 अर्चना बारीक - पी.एच.डी. शोधार्थी
 दाऊ श्री वासुदेव चंद्राकर कामधेनु विश्वविद्यालय अंजोरा, दुर्ग (छ.ग.)

दूध उत्पादन या डेयरी फार्मिंग भारत में, छोटे व बड़े दोनों स्तर पर सबसे ज्यादा विस्तार में फैला हुआ व्यवसाय है और किसानों की आर्थिक वृद्धि में मदद करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत में कई वर्षों से डेयरी व्यवसाय या दूध उत्पादन ने आर्थिक वृद्धि में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गांव के परिवारों में दूध उत्पादन एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि बन गया है और किसान अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए खेतीबाड़ी के साथ इसे भी अपना रहे हैं। देश के लगभग 70 मिलियन ग्रामीण परिवार दूध उत्पादन में लगे हुए हैं। छोटे और सीमांत किसान तथा भूमिहीन श्रमिक व्यक्तिगत रूप से प्रतिदिन लगभग एक से तीन लीटर दूध का उत्पादन कर देश के अधिकांश दूध का उत्पादन करते हैं। भारत के लगभग 78 प्रतिशत किसान छोटे तथा सीमांत हैं जिनके पास लगभग 75 प्रतिशत मादा गौजातीय पशु हैं परंतु केवल 40 प्रतिशत फार्म भूमि है। दूध ग्रामीण परिवारों की सकल आय में लगभग एक तिहाई का तथा भूमिहीन लोगों के सकल आय के लगभग आधे हिस्से तक का योगदान करता है। दूध उत्पादन ने हमारे देश की अर्थव्यवस्था में बड़े स्तर पर भागीदारी की है और बहुत से गरीब किसानों को अपना व्यवसाय स्थापित करने में सहयोग किया है। यदि किसी के पास दूध उत्पादन का व्यवसाय स्थापित करने के लिए प्रारंभिक पूंजी है तो इस (दूध उत्पादन) व्यवसाय को भारत के सभी क्षेत्रों में आसानी से स्थापित किया जा सकता है। भारत में दूध

का उत्पादन 1970 के लगभग 22 मिलियन टन से बढ़कर 2015--16 में 156 मिलियन टन हो गया, जो पिछले 46 वर्षों में 700 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाता है। इसकी बढ़ती भारत में 299 ग्राम प्रतिदिन विश्व औसत के मुकाबले दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 337 ग्राम प्रतिदिन है।

पशुपालन हमारे देश में ग्रामीणों के लिए सिर्फ शौक ही नहीं, बल्कि आमदनी का जरिया भी रहा है। छोटे स्तर पर दूध देने वाले पशुओं को बढ़ावा देने की भारत में सामान्य प्रथा है। कुछ किसान आधुनिक दूध उत्पादन (डेयरी व्यवसाय) तरीकों को नहीं जानते तथा सही जानकारी के अभाव में अक्सर लोग पशुपालन का पूरा फायदा नहीं उठा पाते हैं। डेयरी व्यवसाय तकनीकी के ज्ञान के अभाव के कारण, कभी-कभी वे लाभ प्राप्त करने के स्थान पर निवेश की लागत को भी खो देते हैं। अधिकतम दूध उत्पादन और डेयरी व्यवसाय से लाभ को सुनिश्चित करने के साथ ही सभी चीजों का योजना के अनुसार प्रबंध करने के लिए उचित व्यवसाय योजना के साथ प्रभावी रणनीति बनाना बहुत आवश्यक है। इस काम से संबंधित थोड़ा-सा ज्ञान और सही दिशा में की गयी प्लानिंग किसानों को बेहतरीन मुनाफा कमाने का रास्ता दिखा सकती है।

दूध उत्पादन शुरू करने में आने वाली चुनौतियाँ

दूध उत्पादन को शुरू करने वाले लोगों को आमतौर पर नए दूध उत्पादक के रूप में या भविष्य में आने वाली सभी चुनौतियों का सामना



करके सफलता प्राप्त करने के बारे में पता होना चाहिए। दूध उत्पादन को शुरू करने के समय आने वाली कुछ सामान्य चुनौतियाँ इस प्रकार हैं:

- ❖ दूध उत्पादन का व्यवसाय पूँजी, परिश्रम और पर्याप्त प्रबंधन पर आधारित व्यापार है। इसके लिए उच्च बुनियादी ढांचे की लागत और चिकित्सकीय लागत की आवश्यकता होती है।
- ❖ दूध उत्पादन व्यापार हेतु सही रणनीति और योजना नहीं बना पाना।
- ❖ एक छोटी सी गलती और अनुचित देखभाल गाय और भैंसों की विभिन्न बीमारियों का कारण बनती है।
- ❖ इसके लिए उच्च उत्पादक प्रजनन क्षमता को बनाए रखने की आवश्यकता होती है।
- ❖ व्यापार के सभी पहलुओं पर गहन और व्यापक ज्ञान की आवश्यकता होती है।
- ❖ प्रतिकूल मौसम और जलवायु की परिस्थितियाँ बड़े स्तर पर प्रभावित करती हैं।
- ❖ दूध या इसके उत्पादों का विपणन भी काफी चुनौतिपूर्ण होता है।
- ❖ इसके लिए उच्च कौशल और प्रतियोगी परिश्रम की आवश्यकता होती है।
- ❖ बहुत सी छोटी गाय समय पर गर्भधारण नहीं करती हैं।
- ❖ दूध के उत्पादकों की गुणवत्ता और स्वच्छता को बनाए रखना बहुत मुश्किल है।
- ❖ इस व्यवसाय को शहरी क्षेत्रों और शहरों में शुरू करना बहुत ही चुनौतिपूर्ण है, क्योंकि इसकी लागत बहुत अधिक होती है।
- ❖ इसको बड़े पैमाने पर बढ़ाना बहुत ही मुश्किल होता है।
- ❖ इस व्यवसाय को गाय के साथ शुरू करना प्रारम्भ में बहुत कम लाभ का मार्जिन देता है क्योंकि गायों के परिपक्वता और दूध के उत्पादन को शुरू करने में समय लगता है।
- ❖ 4 या 5वें गर्भाधान के बाद दूध का उत्पादन कम होने लगता है।

भारत में डेयरी उत्पादकों का बाजार पूरे सालभर सक्रिय रहता है। यह पर्यावरण के अनुकूल व्यवसाय है, जो वातावरण को कभी भी प्रदूषित नहीं करता है। इस व्यवसाय के लिए आपको उच्चस्तरीय कुशलता की कोई आवश्यकता नहीं है और परिवार में कम पूँजी से छोटे स्तर पर आसानी से स्थापित किया जा सकता है। यह बेराजगार शिक्षित और अनपढ़ युवाओं के लिए व्यापार करने का महान अवसर लाता है। यदि इस व्यवसाय को उचित योजना और प्रबंध के साथ की जाए, तो यह अधिकतम उत्पादन देता है। यह भारत के मौसम और वातावरण के

अनुसार उत्पादन करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यवसाय है। कोई भी डेयरी व्यवसाय के लिए सरकारी योजनाओं का लाभ ले सकता है और नाबार्ड को लोन के लिए आवेदन भी कर सकता है। हमें केवल दूध उत्पादन के कारोबार को शुरू करने से पहले योजनाओं प्रभावी रणनीतियों को बनाने और उसके अनुसार अपने मस्तिष्क को तैयार करने की आवश्यकता है। यह बहुत अधिक महंगा कारोबार नहीं है और किसी के भी द्वारा जो इसके बारे में अच्छे से जानता हो, तो उसके द्वारा इसकी शुरुआत थोड़ी सी पूँजी लगाकर की जा सकती है हालांकि इसे 100% सफल बनाने के लिए एक व्यक्ति को भीड़ में दौड़ने और बन्द आँखों के साथ अपना कारोबार शुरू करने की आवश्यकता नहीं होती है। एक व्यक्ति जो गंभीरता से इस व्यवसाय को शुरू करना चाहता है तो उसे व्यापार शुरू करने से पहले अपनी आँखों को खोलने पक्ष, विपक्ष का विश्लेषण करने, इस कारोबार के बारे में सबकुछ विस्तार से जानने और आवश्यकता के अनुसार पर्याप्त प्रशिक्षण लेने की आवश्यकता होती है।

व्यवसाय को शुरू करने से पहले उद्देश्यों को निर्धारित करना, प्रबंध के लिए आवश्यक है जो व्यापारी की मदद करते हैं। दूध उत्पादन के व्यापार के लिए ध्यान देने वाले कुछ बिन्दु निम्नलिखित हैं:

- ✓ बुनियादी ढांचा
- ✓ पशु प्रजातियाँ
- ✓ पशुओं का स्वास्थ्य और सुरक्षा
- ✓ दूध निकालते समय स्वच्छता
- ✓ पशुओं के चारे व पानी की व्यवस्था
- ✓ पशु कल्याण और अनुकूलतम वातावरण
- ✓ कुशल और ज्ञान रखने वाले कर्मचारी
- ✓ पशुओं को बीमारियों से बचाने के लिए प्रभावी नियंत्रक उपाय
- ✓ कुल व्यय और लाभ
- ✓ उल्लेखनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रभावी नियंत्रक बिन्दु

दुधारू पशुओं का चुनाव

डेयरी उद्योग में दुधारू पशुओं को पाला जाता है। इस उद्योग के तहत भारत में गाय और भैंस पालन को ज्यादा महत्व दिया जाता है, क्योंकि इनकी अपेक्षा बकरी कम दूध देती है। इस उद्योग में मुनाफे की संभावना को बढ़ाने के लिए पाली जानेवाली गायों और भैंसों की नस्ल, उनकी देखभाल व रख-रखाव की बारीकियों को समझना पड़ता है। भारत में 32 तरह की गायें पायी जाती हैं। गायों की प्रजातियों को तीन रूप में जाना जाता है, भारवाही नस्ल, दूधारक पशु नस्ल और दोहरे उद्देश्य वाली नस्ल। इनमें से दूधारक पशु नस्ल को ही इस उद्योग के लिए चुना जाता है।



दुध उत्पादन की दृष्टि से भारत में तीन तरह की भैंसें मिलती हैं, जिनमें मुरा, मेहसाना और सुरती प्रमुख हैं। मुरा भैंसों की प्रमुख नस्ल मानी जाती है। यह ज्यादातर हरियाणा और पंजाब में पायी जाती है। मेहसाना मिक्सब्रीड है। यह गुजरात और महाराष्ट्र में पायी जाती है। इस नस्ल की भैंस एक महीने में 1,200 से 3,500 लीटर दूध देती हैं। सुरती छोटी नस्ल की भैंस होती है, जो गुजरात में पायी जाती है। यह एक महीने में 1,600 से 1,800 लीटर दूध देती है। अकसर डेयरी उद्योग चलानेवाले इन नस्लों की उचित जानकारी न होने के चलते व्यापार में भरपूर मुनाफा नहीं कमा पाते।

व्यापार की योजना

व्यवसाय की योजना बनाते समय पेशवर विशेषज्ञों और एकाउंटेन्ट की सलाह लेना बेहतर है। यह व्यापार में सभी चुनौतियों को पूरा करने के लिए लचीला होना चाहिए। अन्य किसानों, पशु चिकित्सकों, पोषण विशेषज्ञों, विस्तार शिक्षकों, बैंकों, और अन्य आवश्यक लोगों के साथ दूध उत्पादन शुरू करने के लिए और डेरी के प्रबंधन पर अलग-अलग सुझाव जानने के लिए संबंधों का निर्माण करना चाहिए। व्यापार की संरचना की योजना बनाते समय हमें निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

- ✓ व्यापार शुरू करने के लिए आवश्यक पूँजी।
- ✓ व्यापार शुरू करने से पहले पूँजी के अनुसार मापदंडों का निर्धारण।
- ✓ व्यापार का उद्देश्य, प्रकृति और लक्ष्य।
- ✓ व्यवसाय संचालन की प्रक्रियाओं में आसानी।
- ✓ व्यापार की प्रक्रिया के प्रबंध और नियंत्रण के लिए प्रभावी तरीके।
- ✓ कर्मचारियों के लिए कार्य करने के लिए अच्छा कार्यशील वातावरण।
- ✓ कराधान दायित्वों में कमी।
- ✓ व्यापार को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक स्तर की ऊर्जा, ब्याज और प्रोत्साहन।

सरकार अनुदान

दूध उत्पादन को शुरू करने के लिए भारतीय सरकार के द्वारा अनुदान के रूप में बहुत अधिक मदद की जाती है। भारतीय सरकार ने देश में लोगों को हरित ऊर्जा के उपयोग की ओर प्रोत्साहित करने के लिए दूध उत्पादन के कार्य के लिए 20-25% अनुदान (सब्सिडी) देने की घोषणा की है।

कार्यशैली

दूध उत्पादन तब तक लाभदायक व्यवसाय नहीं बन सकता जब तक कि हम दूध की गुणवत्ता में कमी करते हैं। कुछ दूध उत्पादक

पर्याप्त लगन की कमी और लापरवाही के कारण हानि से भी ग्रसित है। प्रकृति की दशाएं भी इस व्यवसाय की सफलता और असफलता के लिए जिम्मेदार है हालांकि, इसका असर बहुत पड़ता है। मुख्य रूप से इसकी सफलता और वृद्धि निम्नलिखित बिन्दुओं पर निर्भर करती है:

- ✓ मानवीय शक्ति को प्रभावी तरीके से प्रयोग करना और उन्हें सकारात्मक तरीके से निर्देश देना।
- ✓ प्रजनन, भोजन देने, देखभाल करने, अस्वस्थ पशुओं को स्वस्थ पशुओं से बदलने और अन्य सामान्य प्रबंध का स्वास्थ्यपूर्ण तरीके से करना।
- ✓ कृषि उत्पादों के निपटाने का कुशल तरीका।
- ✓ अच्छी व्यवसायिक योजना।
- ✓ दूध उत्पादन के लिए व्यापक और अच्छी व्यापारिक योजना

पशुओं के अनुकूल संरचना और स्थान

व्यापार को शुरू करने से पहले, किसी को भी दिन प्रति दिन की गतिविधियों में मदद प्राप्त करने और पशुओं के लिए अच्छी हवादार रहने की जगह के लिए व्यापार के अनुकूल संरचना की योजना बनानी चाहिए। दूध उत्पादन का पूरा व्यापार पशुओं के स्वास्थ्य और कल्याण के चारों ओर चलता है, इसलिए व्यापारियों को पशुओं के रहने के लिए अच्छा, हवादार और पर्याप्त रहने का स्थान का प्रबंध करना चाहिए। रहने का स्थान पर्याप्त, साफ, खुला हुआ और ऊपर की तरफ से अच्छी तरह से ढका हुआ हालांकि, अच्छी तरह से हवादार होना चाहिए। दूध के लिए जानवरों की संख्या का निर्धारण और उस बाजार का निर्धारण आवश्यक है। जिसमें की आप अपना दूध बेचना चाहते हैं।

पशुओं का चारा और स्वास्थ्य

दूध उत्पादन के बारे में जानने के लिए विशेषज्ञों से आवश्यक सुझाव लेना और चारा खिलाना, गायों और भैंसों की देखभाल करना बहुत आवश्यक है। स्तनपान कराने वाली, सूखी गायों, गर्भवती गाय व भैंसों के लिए पोषण वाले चारे की योजना को विकसित करना। पशुओं के साथ कुछ भी गलत होने; जैसे- पशु की मृत्यु, पुरानी पशुपालन प्रणाली, कीड़े से संक्रमित होना, बीमार पशु की स्वयं चिकित्सा करना, निम्नस्तरीय प्रजनन विकास आदि से देखभाल के लिए रणनीति को अवश्य विकसित करना चाहिए। सभी चीजों की सकारात्मक रूप से अपनी पूँजी के अनुसार पशुओं की चिकित्सा और प्रबंधन की मासिक लागत को निर्धारित करना चाहिए। उच्च दूध उत्पादन के लिए आपको अपनी गायों को अधिक प्रोटीन और कार्बोहाईड्रेट लगभग 29 किलो चारा प्रति दिन दिया जाना चाहिए, जिसमें तिपतिया, घास, अल्फा



अल्फा घास, घास सिलेज, जौ, जई, मक्का, सोयाबीन, मक्का सिलेज, खनिज और विटामिन की खुराक सहित बिनौला शामिल है देने चाहिए। आपको पर्याप्त और स्वच्छ पानी प्रणाली की व्यवस्था करने की आवश्यकता है, क्योंकि प्रत्येक गाय प्रतिदिन 80-180 लीटर तक पानी पीती है। उन्हें नहाने और उनके रहने के स्थान को साफ रखने के लिए भी पानी की आवश्यकता होती है।

प्रौद्योगिकी और तकनीकी

वर्तमान में बहुत सी प्रौद्योगिकियों और तकनीकी सहयोग की उपलब्धता है, जो डेरी व्यवसाय को सफल कारोबार बना सकती है और अधिकतर भारतीय किसानों के साथ ही वाणिज्यिक व्यापारियों के रूप में चल रहा है। हमारे पास पूरी तरह से विकसित और प्रभावी ईआरपी साफ्टवेयर की किस्में हैं, जो पूरी प्रक्रिया के दौरान उत्पादन में सहयोग कर सकती है। हमारे पास अत्याधुनिक उत्पादन संयंत्र को स्थापित करने की सभी सुविधाएं हैं। यह बहुत ही समय और भंडारण विशिष्ट व्यवसाय है, जो तत्काल परिणाम नहीं देता है; हालांकि, समय के साथ ठोस परिणाम देता है। इस व्यवसाय के लिए बहुत अधिक धैर्य, समय और भरोसे की आवश्यकता होती है।

कृत्रिम गर्भाधान

यदि आप केवल मादा और स्वस्थ बच्चे को चाहते हैं तो आपको पशुओं की नस्ल में सुधार करने और व्यवसाय को नियमित रूप से चलाने के लिए कृत्रिम गर्भाधान की प्रणाली का प्रयोग करना चाहिए। कृत्रिम गर्भाधान प्रणाली बहुत ही सुरक्षित है और इससे मवेशी के जीवन को खतरा कम रहता है; इसके लिए आपको केवल समय पर प्रजनन के लिए एआई तकनीकी को लेने की आवश्यकता है। कृत्रिम गर्भाधान की प्रणाली के द्वारा पैदा की गई गाय अधिक मात्रा में उच्च प्रोटीन और वसा युक्त दूध देने में सक्षम होती है। अमेरिका में, दूध देने की शानदार क्षमता के कारण प्रत्येक दस में से नौ गाय होस्टलीन होती है। अन्य आम नस्लें, जर्सी, आयरशायर, ब्राउन स्विस, शोर्टहोन, गुरेनसे आदि हैं।

दूध प्रसंस्कारित उत्पाद

दूध प्रसंस्कारित उत्पादों को बनाकर डेरी व्यवसाय के लाभ को कई गुना बढ़ाया जा सकता है। इस व्यवसाय में आय संवर्धन के लिए कारोबार के मानदंड स्थापित करके उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। दूध से कई दूध जनित उत्पादों का निर्माण किया जाता है। भारतवर्ष में प्रचलित कुछ प्रमुख प्रसंस्कारित दूध उत्पाद निम्नलिखित हैं:

1. वसा युक्त पदार्थ - घी, मलाई, माखन
2. गर्मी एवम एसिड युक्त पदार्थ - पनीर, छेना (रसगुल्ला, पंटुआ)
3. संवर्धित प्रदार्थ- दही, लस्सी, श्रीखण्ड, मिस्टी दही

4. गरम निर्जलिकृत उत्पाद- राबड़ी, मावा, बसूंडी, बुर्फई, कलाकंद
5. हिमकृत उत्पाद- आइस क्रीम, कुलफी
6. दूध आधारित पुडिंग- खीर, पायसम, सोहन हलवा, घेवर

जैविक दूध

जैविक दूध उत्पाद की आजकल बहुत माँग है। यह दूध बिना किसी कृत्रिम साधनों के द्वारा उत्पादन किया जाता है। इस प्रकार के दूध उत्पाद में जानवर को किसी भी एंटीबायोटिक, वेक्सीन अथवा आँतकृमि दवाओं का प्रयोग नहीं किया जाता है और नहीं किसी प्रकार के विटामिन, खनिज बहय संसाधनों द्वारा जानवरों को दिए जाते हैं। दूध निकालने के तरीके के बारे में अवश्य ज्ञान होना चाहिए अर्थात् जैविक दूध (एंटीबायोटिक मुक्त अर्थात् गाय को एंटीबायोटिक नहीं देनी चाहिए और केवल जैविक चारा ही देना चाहिए) और परंपरागत दूध उत्पादन (जैविक साधनों के स्थान पर दूध उत्पादन)। इस जैविक दूध की कीमत सामान्य दूध की कीमत की दुगुनी तिगुनी तक हो सकती है। वर्तमान समय में यह दूध किसानों की आय संवर्धन में अती सहायक है।

गोबर गैस तथा खाद

भारत में मवेशियों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है इसलिए बायोगैस के विकास की प्रचुर संभावना है। बायोगैस (मीथेन या गोबर गैस) मवेशियों के उत्सर्जन पदार्थों को कम ताप पर डाइजेस्टर में चलाकर माइक्रोब उत्पन्न करके प्राप्त की जाती है। जैव गैस में 75 प्रतिशत मेथेन गैस होती है जो बिना धुँआ उत्पन्न किए जलती है। लकड़ी, चारकोल तथा कोयले के विपरीत यह जलने के पश्चात राख जैसे कई अपशिष्ट भी नहीं छोड़ती है। ग्रामीण इलाकों में भोजन पकाने तथा ईंधन के रूप में प्रकाश की व्यवस्था करने में इसका उपयोग हो रहा है। राष्ट्रीय बायोगैस विकास कार्यक्रम (1981-82) के अंतर्गत पारिवारिक या घरेलू तथा सामुदायिक दो प्रकार के संयंत्रों की स्थापना की जाती है। इससे स्वच्छ व सस्ती ऊर्जा आपूर्ति तथा ग्रामीण पर्यावरण की सफाई के साथ ही उच्च कोटि की कार्बनिक खाद भी प्राप्ति होती है क्योंकि जैव गैस के लिए प्रयुक्त गोबर तथा जल के कीचड़ में नाइट्रोजन व फास्फोरस प्रचुर मात्रा में होते हैं। सावधानी केवल यह बरतनी चाहिए कि बायोगैस संयंत्र की 15 मीटर की परिधि में कोई पेयजल स्रोत न हो।

दूध व्यवसाय दूध, दही, घी, मट्ठा, मखन, आईसक्रीम, दूध उत्पादकों, मवेशियों का गोबर (बिजली, बायोगैस, उच्च गुणवत्ता वाले जैविक उर्वरक आदि), स्वयं पशुओं आदि के माध्यम से बहुगामी लाभ प्रदान करते हैं।





विकसित भारत 2047 में कृषि मशीनीकरण की भूमिका

डा० एन०के० शर्मा

पूर्व अधिष्ठाता

कृषि अभियंत्रण संकाय, च०शे० आजाद कृषि एवं प्रौ० वि०वि०, कानपुर परिसर-इटावा

भारत की कृषि व्यवस्था में सीमान्त एवं छोटे किसानों की संख्या लगभग 85 प्रतिशत से अधिक है, इन किसानों के पास सीमित भूमि, कम पूंजी एवं आधुनिक तकनीकों तक सीमित पहुंच होने के कारण कृषि उत्पादन और आय दोनों प्रभावित होते हैं, इस स्थिति में कृषि यंत्रियकरण का विस्तार छोटे किसानों की उत्पादकता एवं आय को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है, इस लेख का प्रमुख उद्देश्य हमारे कृषि वैज्ञानिकों, कृषि इंजीनियरों का इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुये मुख्य रूप से कृषि मशीनीकरण के माध्यम से सीमान्त एवं छोटे किसानों को लाभ पहुंचाने का है। दिनांक 31 जुलाई 2025 को उत्तर प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती आनन्दी बेन पटेल जी द्वारा कृषि अभियंत्रण संकाय जो कि च०शे० आजाद कृषि वि०वि० कानपुर का एक तकनीकी संकाय है, का विस्तृत निरीक्षण करते हुये निर्देश प्रदान किये थे कि अब समय आ गया है कि हमारे कृषि इंजीनियर मुख्य रूप से छोटी जोत के किसानों के लिये खेती में प्रयुक्त होने वाले उपकरण एवं मशीनरी का निर्माण करते हुये किसानों को अधिक से अधिक लाभ पहुंचाने का प्रयास करें, इसी दिशा में यह संकाय निरन्तर कार्य कर रहा है जिसकी प्रमुख झलकियां इस लेख में प्रदर्शित की गयी हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश है एवं इसकी अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है, इसको आकार

देने के लिये एवं विकसित भारत/2047 की अवधारणा को साकार करने हेतु उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री जी द्वारा उत्तर प्रदेश को वर्ष 2047 तक एक विकसित राज्य बनाने हेतु चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर के अधीन संचालित कृषि अभियंत्रण संकाय, इटावा के माननीय कुलपति डा० संजीव गुप्ता के कुशल नेतृत्व में कृषि मशीनीकरण के क्षेत्र में निरन्तर कृषि इंजीनियर तैयार कर रहा है। यह संस्थान निश्चित रूप से उत्तर प्रदेश को वर्ष 2047 तक एक विकसित राज्य बनाने में शिक्षण, शोध एवं प्रसार के माध्यम से अग्रिम भूमिका निभायेगा।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। आजादी के बाद से कृषि क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, लेकिन 21वीं सदी में “विकसित भारत” का सपना पूरा करने के लिए कृषि को और अधिक आधुनिक, वैज्ञानिक तथा टिकाऊ बनाना आवश्यक है। इस दिशा में कृषि मशीनीकरण (Agricultural Mechanization) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कृषि मशीनीकरण का अर्थ

कृषि मशीनीकरण का अर्थ है खेती की विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे जुताई, बुवाई, सिंचाई, उर्वरक डालना, कीटनाशक छिड़काव, फसल



की कटाई, श्रेषिंग, परिवहन आदि कार्यों करने में मशीनों, औजारों और आधुनिक तकनीकों का प्रयोग

विकसित भारत में कृषि मशीनीकरण की आवश्यकता:

- 1. जनसंख्या वृद्धि:** भारत की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। बढ़ती खाद्य मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन बढ़ाना अनिवार्य है, जो केवल मशीनीकरण से संभव है।
- 2. श्रमिकों की कमी:** गाँवों से शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है, जिससे कृषि श्रमिकों की कमी हो रही है। मशीनें इस कमी को पूरा कर सकती हैं।
- 3. समय की बचत:** मशीनों से कृषि कार्य तेजी से होते हैं और समय पर बुवाई व कटाई हो पाती है।
- 4. उत्पादकता में वृद्धि:** मशीनीकरण से फसल उत्पादन अधिक और गुणवत्तापूर्ण होता है।
- 5. कृषि को आकर्षक बनाना:** आधुनिक तकनीक के प्रयोग से युवाओं को भी कृषि क्षेत्र की ओर आकर्षित किया जा सकता है।

विकसित भारत में कृषि मशीनीकरण के लाभ

- 1. फसल उत्पादन में वृद्धि:** आधुनिक मशीनें किसानों को अधिक उपज देती हैं।
- 2. लागत में कमी:** एक ही मशीन कई कार्य कर सकती है, जिससे उत्पादन लागत घटती है।
- 3. समय व श्रम की बचत:** किसान कम समय और कम श्रम से ज्यादा काम कर सकता है।
- 4. पश्चिमी देशों की तरह प्रगति:** अमेरिका, जापान जैसे देशों ने मशीनीकरण से ही कृषि में उन्नति की है।
- 5. ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती:** मशीनीकरण से रोजगार के नए अवसर (जैसे- मशीन सेवा केंद्र, रिपेयरिंग वर्कशॉप) भी विकसित होते हैं।
- 6. पर्यावरण संरक्षण:** आधुनिक तकनीक से संसाधनों (पानी, उर्वरक, कीटनाशक) का उचित और संतुलित उपयोग होता है।

चुनौतियाँ

- 1. छोटे जोत का आकार:** भारत में अधिकांश किसानों की ज़मीन बहुत छोटी है, जिस पर बड़े ट्रैक्टर या मशीनें चलाना कठिन है।

- 2. पूंजी की कमी:** मशीनें महंगी होने के कारण हर किसान इन्हें खरीद नहीं पाता।
- 3. तकनीकी ज्ञान की कमी:** ग्रामीण क्षेत्रों में मशीनों के सही उपयोग और रखरखाव का ज्ञान कम है।
- 4. बिजली व ईंधन की समस्या:** मशीनों के संचालन के लिए पर्याप्त ऊर्जा उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है।

समाधान

- 1. कस्टम हायरिंग सेंटर:** जहाँ किसान किराए पर मशीनें ले सकें।
- 2. सरकारी अनुदान:** किसानों को मशीनें सस्ती दरों पर उपलब्ध कराई जाएँ।
- 3. लघु व मध्यम मशीनों का विकास:** छोटे किसानों के लिए हल्की और किफायती मशीनें बनाना।
- 4. प्रशिक्षण कार्यक्रम:** किसानों को मशीनों के उपयोग, रखरखाव और सुरक्षा के बारे में जागरूक करना।
- 5. नवाचार और स्टार्टअप को बढ़ावा:** नई तकनीकों और स्मार्ट मशीनों के निर्माण को प्रोत्साहन देना।
- 6. कृषि अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, इटावा के इंजीनियरों द्वारा निर्मित किसानों के प्रयोगार्थ हेतु हाथ से संचालित घास काटने की मशीन, ट्रैक्टर मॉड्यूल (कट सेक्शन) और बहुउद्देशीय सौर मकई शेल्डर निर्माण किया गया जिसका अवलोकन माननीय राज्यपाल उत्तर प्रदेश द्वारा किया गया है।**

निष्कर्ष

विकसित भारत के निर्माण में कृषि मशीनीकरण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल किसानों की आय बढ़ाएगा बल्कि खाद्य सुरक्षा, ग्रामीण समृद्धि और आत्मनिर्भरता की दिशा में भी एक बड़ा कदम होगा। यदि भारत को “विकसित भारत 2047” का सपना साकार करना है, तो कृषि मशीनीकरण को प्राथमिकता देनी होगी और इसे गाँव-गाँव तक पहुँचाना होगा।



छोटे किसानों के लिए बेहतर बीज विकल्प: संकर बीज

अक्षिता महाजन

पीएचडी, पादप प्रजनन और आनुवंशिकी विभाग
शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू

बीज को अक्सर कृषि का "प्रारंभिक बिंदु" कहा जाता है, और इसकी गुणवत्ता कृषि प्रणालियों की उत्पादकता, लाभप्रदता और लचीलेपन को काफी हद तक निर्धारित करती है। छोटे किसानों के लिए, जो कई विकासशील देशों में खाद्य उत्पादन की रीढ़ हैं, उन्नत बीजों तक पहुँच अत्यंत महत्वपूर्ण है। सीमित भूमि, सीमित संसाधन और जलवायु परिवर्तन के कारण, उनके लिए ऐसे बीजों पर निर्भर रहना आवश्यक हो जाता है जो न केवल बेहतर उपज दें, बल्कि जैविक और अजैविक तनावों को भी झेल सकें। उन्नत बीजों का चयन—चाहे वे उच्च उपज देने वाले हों, तनाव-सहनशील हों, कीट- और रोग-प्रतिरोधी हों, या पोषक तत्वों से भरपूर हों—छोटे किसानों को आजीविका सुरक्षित करने, खाद्य सुरक्षा बढ़ाने और बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल ढलने में मदद कर सकते हैं। संकर बीज विशेष रूप से विकसित बीज होते हैं जो आनुवंशिक रूप से भिन्न दो जनक पौधों के सर्वोत्तम गुणों को मिलाकर संकरण द्वारा उत्पादित किए जाते हैं। संकरण के नाम से जानी जाने वाली यह प्रक्रिया आधुनिक कृषि और पादप प्रजनन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। संकर बीजों को बेहतर उपज, कीटों और रोगों के प्रति बेहतर प्रतिरोधक क्षमता, एकसमान वृद्धि और विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल बेहतर अनुकूलन क्षमता जैसी उन्नत विशेषताओं वाली फसलें पैदा करने के लिए डिज़ाइन किया गया है।

किसान संकर बीजों का व्यापक रूप से उपयोग करते हैं क्योंकि इनसे अक्सर पारंपरिक किस्मों की तुलना में अधिक मजबूत और अधिक

उत्पादक पौधे प्राप्त होते हैं। ये बीज बढ़ती आबादी की बढ़ती खाद्य मांग को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हालांकि, संकर बीजों को आमतौर पर प्रत्येक मौसम में खरीदना पड़ता है, क्योंकि उन्हें बचाकर दोबारा बोने से समान गुणवत्ता या उपज प्राप्त नहीं हो सकती है।

कुल मिलाकर, संकर बीज कृषि विज्ञान में एक महत्वपूर्ण



प्रगति का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो फसलों के प्रदर्शन और कृषि उत्पादकता में सुधार करने के साथ-साथ विश्व स्तर पर खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा देते हैं।

छोटे किसानों की कृषि में उन्नत बीजों का महत्व

उपज वृद्धि- आधुनिक उन्नत किस्में पारंपरिक बीजों की तुलना में उपज में 20-50% तक की वृद्धि कर सकती हैं, जिससे समान भूमि से अधिक लाभ सुनिश्चित होता है।

जलवायु लचीलापन - प्रजनन प्रयासों ने ऐसे बीज विकसित किए हैं जो सूखे, गर्मी, लवणता और ठंड को सहन कर सकते हैं, जिससे किसान अप्रत्याशित मौसम के बावजूद उत्पादन जारी रख सकते हैं।

पोषण सुरक्षा - लौह-समृद्ध फलियाँ, जस्ता-समृद्ध चावल और प्रोटीन-समृद्ध मक्का जैसी जैव-सशक्त फसलें ग्रामीण परिवारों को भोजन और पोषण सुरक्षा दोनों प्रदान करती हैं।

आर्थिक लाभ - बेहतर उपज से घरेलू आय में वृद्धि, खाद्य सहायता पर निर्भरता में कमी और स्थानीय बाजारों में भागीदारी के अवसर मिलते हैं।

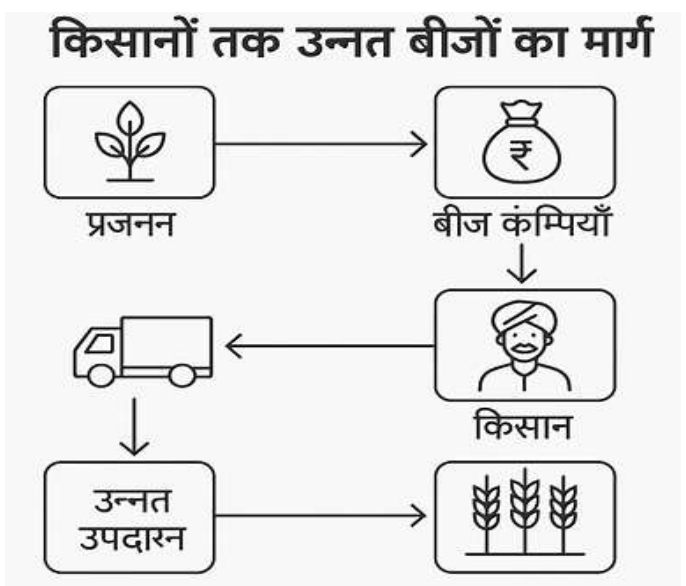
उन्नत बीजों तक पहुँचने में छोटे किसानों के सामने आने वाली चुनौतियाँ

सिद्ध लाभों के बावजूद, छोटे किसानों को उन्नत किस्मों को अपनाने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है:

सीमित उपलब्धता - बीज वितरण नेटवर्क अक्सर कमज़ोर होते हैं, जिससे गुणवत्तापूर्ण बीजों तक समय पर पहुँच नहीं हो पाती।

उच्च लागत - संसाधन-विहीन किसानों के लिए संकर और उन्नत बीज अप्राप्य हो सकते हैं।

जागरूकता का अभाव - कई किसान उन्नत बीजों के लाभों से अनभिज्ञ हैं या उन्हें उचित प्रबंधन के ज्ञान का अभाव है।



पारंपरिक किस्मों को प्राथमिकता - किसान अक्सर परिचितता, स्वाद वरीयता या सांस्कृतिक मूल्य के कारण स्थानीय किस्मों का ही उपयोग करते हैं।

अपर्याप्त नीतिगत समर्थन - बीज प्रमाणन, आपूर्ति श्रृंखलाओं और विस्तार सेवाओं में कमियाँ बड़े पैमाने पर अपनाने में बाधा डालती हैं।

पादप प्रजनन और जैव प्रौद्योगिकी की भूमिका

छोटे किसानों की कृषि प्रणालियों के लिए अनुकूलित उन्नत बीजों के विकास में पादप प्रजनन केंद्रीय भूमिका निभाता रहा है।

पारंपरिक प्रजनन- उच्च उपज देने वाली किस्मों, शीघ्र पकने वाली किस्मों और क्षेत्र-विशिष्ट अनुकूलन पर केंद्रित है। उदाहरण के लिए, कम अवधि वाली अरहर या शीघ्र पकने वाली चावल की किस्में किसानों को सूखा पड़ने से पहले फसल काटने में मदद करती हैं।

संकर प्रजनन- मक्का, बाजरा और सब्जियों के संकरों ने उपज और रोग सहनशीलता में उल्लेखनीय वृद्धि दिखाई है।

मार्कर-सहायता प्राप्त प्रजनन- सूखा सहनशीलता, रोग प्रतिरोधक क्षमता या बेहतर पोषण सामग्री जैसे गुणों वाली प्रजातियों का तेजी से चयन संभव बनाता है।

जैव प्रौद्योगिकी और जीन संपादन- CRISPR-Cas और ट्रांसजेनिक दृष्टिकोण कीटों के प्रति सटीक प्रतिरोध, बेहतर प्रकाश संश्लेषण दक्षता और जलवायु तनाव सहनशीलता वाली फसलों को विकसित करने में मदद कर रहे हैं।

उन्नत बीज विकल्पों की सफलता की कहानियाँ

अफ्रीका के लिए सूखा-सहिष्णु मक्का (DTMA)- इस पहल ने लाखों किसानों को सूखे की स्थिति में 20-30% अधिक उपज देने में सक्षम मक्का की किस्में प्रदान की हैं।

उप-सहारा अफ्रीका में जैव-सशक्त शकरकंद- विटामिन A से भरपूर, इन किस्मों ने महिलाओं और बच्चों में कुपोषण को उल्लेखनीय रूप से कम किया है।

लवण-सहिष्णु चावल (स्वर्ण-सब1)- भारत और बांग्लादेश में व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली यह किस्म जलमनता और लवणता में भी जीवित रहती है, जिससे बाढ़-प्रवण क्षेत्रों के किसानों को मदद मिलती है।

दक्षिण एशिया में ताप-सहिष्णु गेहूँ- CIMMYT/ICAR कार्यक्रमों के तहत विकसित, ये किस्में बढ़ते तापमान के बावजूद स्थिर उपज बनाए रखती हैं।





सहभागी दृष्टिकोणों के माध्यम से किसानों को सशक्त बनाना

जब किसान चयन और परीक्षण में सक्रिय रूप से शामिल होते हैं, तो उन्नत बीजों को अपनाने की दर में उल्लेखनीय वृद्धि होती है:

सहभागी किस्म चयन (पीवीएस) - किसान अपने खेतों में विभिन्न किस्मों का मूल्यांकन करते हैं और स्थानीय परिस्थितियों के लिए सबसे उपयुक्त किस्मों का चयन करते हैं।

सामुदायिक बीज बैंक - स्थानीय संस्थाएँ जो उन्नत और पारंपरिक बीजों का भंडारण और वितरण करती हैं, जिससे उपलब्धता और सामर्थ्य सुनिश्चित होता है।

किसान फील्ड स्कूल (एफएफएस) - ऐसे मंच जहाँ विस्तार कार्यकर्ता किसानों को उन्नत बीजों के प्रबंधन, मृदा स्वास्थ्य और कीट नियंत्रण पर प्रशिक्षण देते हैं।

नीति और संस्थागत समर्थन

उन्नत बीजों को अपनाने के पैमाने को बढ़ाने के लिए, सक्षम नीतियाँ और मज़बूत संस्थाएँ आवश्यक हैं:

बीज प्रणालियों को मज़बूत करना - स्थानीय बीज उत्पादन, प्रमाणन और वितरण में सुधार।

सब्सिडी और प्रोत्साहन - छोटे किसानों के लिए उन्नत बीजों की लागत कम करना।

सार्वजनिक-निजी भागीदारी - व्यापक प्रसार के लिए अनुसंधान संस्थानों, बीज कंपनियों और किसान सहकारी समितियों के बीच सहयोग।

क्षमता निर्माण - उन्नत बीजों की क्षमता को अधिकतम करने के लिए किसानों को सर्वोत्तम कृषि पद्धतियों का प्रशिक्षण।

आगे की राह

छोटे किसानों की खेती में बदलाव लाने के लिए बेहतर बीज विकल्पों के लिए, हस्तक्षेपों को स्थानीय अनुकूलन, सामर्थ्य और पहुँच पर केंद्रित होना चाहिए। प्रजनकों को बहु-तनाव सहिष्णु किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए, जबकि सरकारों और गैर-सरकारी संगठनों को बीज प्रणालियों और किसान शिक्षा को मज़बूत करना चाहिए। बेहतर बीज उपलब्धता, प्रबंधन पद्धतियों और बाज़ार के अवसरों के बारे में वास्तविक समय की जानकारी प्रदान करने के लिए डिजिटल उपकरणों और मोबाइल-आधारित प्लेटफॉर्म का भी लाभ उठाया जा सकता है।

निष्कर्ष

उन्नत बीज विकल्प छोटे किसानों की कृषि में बदलाव लाने का एक सशक्त माध्यम है। उपज बढ़ाकर, जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीलापन सुनिश्चित करके और पोषण संबंधी परिणामों में सुधार करके, उन्नत किस्में ग्रामीण आजीविका को सीधे तौर पर बेहतर बना सकती हैं। हालाँकि, सफलता न केवल वैज्ञानिक नवाचार पर निर्भर करती है, बल्कि वितरण प्रणालियों, नीतिगत ढाँचों और किसान जागरूकता को मज़बूत करने पर भी निर्भर करती है। सही समर्थन के साथ, उन्नत बीज छोटे किसानों को निर्वाह खेती से आगे बढ़ने और जलवायु अनिश्चितता के दौर में स्थायी खाद्य सुरक्षा में योगदान करने के लिए सशक्त बना सकते हैं।





कलौंजी की खेती शुरू कर किसान ने किया नवाचार

डा. द्वारका- अतिथि शिक्षक, कीटशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, कृषि महाविद्यालय, पन्ना, मध्य प्रदेश

शोभाराम ठाकुर- वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी, एक्रिप परियोजना तिल फसल, कृषि महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

डॉ. आकाश बरेला- सहायक प्राध्यापक, आनुवंशिकी और पादप प्रजनन विभाग, आईटीएम यूनिवर्सिटी, ग्वालियर, मध्य प्रदेश

डॉ. शिवांगी रहांगडाले- अनुसंधान सहयोगी, आनुवंशिकी और पादप प्रजनन विभाग, भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

आदित्य कुमार शर्मा- कीटशास्त्र विभाग, बी.आर.डी. पी.जी. कॉलेज देवरिया, डी.डी.यू. जी.के.पी. विश्वविद्यालय, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

निशा चढ़ार- एम.एससी.(बॉटनी), महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, शासकीय स्नातकोत्तर उत्कृष्ट महाविद्यालय, टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

परंपरागत फसलों की बढ़ती लागत और कम लाभ को देखते हुए कई किसान अब वैकल्पिक एवं औषधीय फसलों की ओर रुख कर रहे हैं। दमोह जिले के विकासखंड बटियागढ़ क्षेत्र के ग्राम खड़ेरी के किसान श्री आकाश शक्ति पटेल ने इसी दिशा में पहल करते हुए अपने खेत में कलौंजी की खेती प्रारंभ की। कृषि विभाग के मार्गदर्शन में किए गए इस प्रयोग से उन्हें अच्छी आमदनी प्राप्त हुई। कलौंजी एक महत्वपूर्ण औषधीय एवं मसाला फसल है जिसकी बाजार में निरंतर मांग बनी रहती है। इस पहल ने क्षेत्र के अन्य किसानों को भी वैकल्पिक फसलों को अपनाने के लिए प्रेरित किया है।

पृष्ठभूमि

बटियागढ़ क्षेत्र के किसान लंबे समय से गेहूं, चना और सोयाबीन जैसी परंपरागत फसलों की खेती करते आ रहे हैं। हालांकि इन फसलों में उत्पादन लागत बढ़ने और लाभ कम होने के कारण किसानों को आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में किसानों को ऐसी फसलों की आवश्यकता महसूस हुई जो कम लागत में अधिक लाभ दे सकें। इसी संदर्भ में औषधीय और मसाला फसल कलौंजी एक बेहतर विकल्प के रूप में सामने आई।

कलौंजी की प्रमुख मंडी नीमच मानी जाती है। वर्तमान में नीमच मंडी में कलौंजी का भाव 20 हजार से 30 हजार प्रति क्विंटल तक लगाया जा रहा है। इस बाजार भाव को देखते हुए किसानों को इस फसल से परंपरागत फसलों की तुलना में कहीं अधिक मुनाफा मिलने की उम्मीद है। यदि उत्पादन अनुमान के अनुरूप रहा, तो कम रकबे में भी अच्छी आमदनी संभव है।

ग्राम पंचायत खड़ेरी के किसान श्री आकाश शक्ति पटेल ने तकनीकी मार्गदर्शन कृषि विभाग के जिला अधिकारी राजकुमार पटेल के मार्गदर्शन में अपने खेत में कलौंजी की खेती कर नया प्रयोग किया है। विज्ञान के अनुसार, कलौंजी एक महत्वपूर्ण औषधीय फसल है, जिसकी बाजार में सालभर मांग बनी रहती है। सही तकनीक और देखभाल के साथ प्रति एकड़ 4 से 5 क्विंटल तक उत्पादन की संभावना रहती है।

किसान का परिचय:

नाम: श्री आकाश शक्ति पटेल,

ग्राम: खड़ेरी,

विकासखंड: बटियागढ़,

जिला: दमोह, मध्य प्रदेश।



श्री आकाश शक्ति पटेल एक प्रगतिशील किसान हैं जो नई तकनीकों और नई फसलों को अपनाने में रुचि रखते हैं।

समस्या

क्षेत्र के किसानों के सामने निम्न समस्याएँ थीं-

- ✓ परंपरागत फसलों में बढ़ती लागत।
- ✓ बाजार मूल्य में उतार-चढ़ाव।
- ✓ कम लाभ के कारण खेती की घटती आर्थिक स्थिरता।
- ✓ नई लाभकारी फसलों के बारे में जानकारी की कमी।

हस्तक्षेप

कृषि विभाग के जिला अधिकारी एवं वैज्ञानिकों के मार्गदर्शन में श्री आकाश शक्ति पटेल ने अपने खेत में कलौंजी की खेती का प्रयोग किया। कलौंजी की खेती के लिए उन्होंने वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया, जैसे-

- उपयुक्त भूमि चयन।
- समय पर बुवाई।
- संतुलित उर्वरक प्रबंधन।
- खरपतवार नियंत्रण।

परिणाम

इस नवाचार के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए-

- कलौंजी की फसल का अच्छा उत्पादन प्राप्त हुआ।
- प्रति क्विंटल बाजार मूल्य लगभग रुपए 20,000 से रुपए 30,000 तक प्राप्त हुआ।
- परंपरागत फसलों की तुलना में अधिक आर्थिक लाभ मिला।

- क्षेत्र में वैकल्पिक फसल के रूप में नई संभावनाएं विकसित हुईं।

प्रभाव

श्री आकाश शक्ति पटेल की सफलता से क्षेत्र के अन्य किसान भी प्रेरित हुए। अब कई किसान औषधीय और मसाला फसलों की खेती की ओर रुचि दिखा रहे हैं। कृषि विशेषज्ञों के अनुसार कलौंजी की फसल कम लागत में प्रति एकड़ लगभग 4-5 क्विंटल उत्पादन दे सकती है, जिससे किसानों को अच्छी आय प्राप्त हो सकती है।

निष्कर्ष

यह सफलता कहानी दर्शाती है कि यदि किसान परंपरागत खेती के साथ-साथ वैकल्पिक और औषधीय फसलों को अपनाएं तो वे अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। कलौंजी जैसी फसलें न केवल आर्थिक दृष्टि से लाभकारी हैं बल्कि कृषि विविधीकरण को भी बढ़ावा देती हैं।

अन्य किसानों के लिए संदेश

- परंपरागत फसलों के साथ वैकल्पिक एवं औषधीय फसलों को अपनाएं।
- नई तकनीकों और कृषि वैज्ञानिकों की सलाह का पालन करें।
- बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए फसल चयन करें।
- कृषि विविधीकरण से आय के नए अवसर विकसित किए जा सकते हैं।





गर्मी की लहर से बचाव में सही वस्त्रों का चयन है जरूरी

डॉ. गरिमा सिंह,

परिधान एवं वस्त्र विज्ञान विभाग

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

गर्मी के मौसम में बढ़ते तापमान और लू (हीट वेव) का प्रभाव स्वास्थ्य पर गंभीर असर डाल सकता है। ऐसे समय में केवल पानी पीना और धूप से बचना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उचित वस्त्रों का चयन भी शरीर को गर्मी से बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से कपड़ों का रंग, कपड़े का प्रकार और पहनने का तरीका शरीर के तापमान को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

विशेषज्ञों के अनुसार, गर्मियों में हल्के रंगों के वस्त्र जैसे सफेद, हल्का नीला, क्रीम, हल्का गुलाबी या हल्का हरा पहनना चाहिए। इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि हल्के रंग सूर्य की किरणों और ऊष्मा को अधिक परावर्तित (Reflect) करते हैं, जिससे शरीर कम गर्म होता है। इसके विपरीत, काले या गहरे रंग के कपड़े ऊष्मा को अवशोषित (Absorb) कर लेते हैं, जिससे शरीर का तापमान बढ़ सकता है।

कपड़े के प्रकार में सूती (Cotton), लिनन (Linen) और खादी जैसे प्राकृतिक रेशों से बने वस्त्र सबसे उपयुक्त माने जाते

हैं। ये कपड़े हवा का संचार बनाए रखते हैं, पसीने को जल्दी सोखते हैं और उसे तेजी से वाष्पित होने देते हैं। यह प्रक्रिया शरीर को प्राकृतिक रूप से ठंडा रखने में मदद करती है। वहीं, पॉलिएस्टर और नायलॉन जैसे सिंथेटिक कपड़े गर्मी को रोकते हैं और पसीने को बाहर नहीं निकलने देते, जिससे असहजता बढ़ती है।

इसके अलावा, ढीले और आरामदायक कपड़े पहनने चाहिए ताकि त्वचा और कपड़े के बीच हवा का प्रवाह बना रहे। सिर को ढकने के लिए सूती दुपट्टा, टोपी या गमछे का प्रयोग भी लाभकारी है।

इस भीषण गर्मी में सही वस्त्रों का चयन अपनाकर हम न केवल लू से बच सकते हैं, बल्कि अपने स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रख सकते हैं।

सही कपड़े चुनें, स्वस्थ रहें और गर्मी को मात दें।





गुणवत्ता पूर्ण बीजों का उपयोग और उनका कृषि विकास में योगदान

सिद्धार्थ मिश्रा- शोध छात्र, ए. के. सिंह- प्राध्यापक

सस्य विज्ञान संकाय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

पी. के. चतुर्वेदी- सहायक प्राध्यापक

नेशनल पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज बडहलगंज, गोरखपुर

कृषि किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों की आय, खाद्य सुरक्षा तथा ग्रामीण विकास का आधार कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है। कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए अनेक आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जिनमें उन्नत एवं गुणवत्तायुक्त बीजों का विशेष महत्व है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार किसी भी फसल की कुल उत्पादकता में लगभग 15-20 प्रतिशत योगदान केवल अच्छे बीजों का होता है, जबकि उचित प्रबंधन के साथ यह योगदान और अधिक बढ़ सकता है। गुणवत्तायुक्त बीज केवल अधिक उत्पादन ही नहीं देते, बल्कि रोग एवं कीट प्रतिरोधक क्षमता, जलवायु सहनशीलता तथा बेहतर गुणवत्ता वाली उपज भी प्रदान करते हैं। वर्तमान समय में बढ़ती जनसंख्या, घटते प्राकृतिक संसाधन और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच गुणवत्तायुक्त बीज कृषि विकास की आधारशिला बन चुके हैं। आज कृषि क्षेत्र में कई नवीन प्रवृत्तियाँ तेजी से उभर रही हैं। संकर (हाइब्रिड) बीज, जैव-सुदृढ़ (बायोफोर्टिफाइड) बीज तथा सूखा एवं लवणीयता सहनशील किस्मों का विकास किसानों के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। डिजिटल कृषि और प्रिसिजन फार्मिंग के साथ बीज उपचार तकनीकों का भी विस्तार हुआ है, जिससे अंकुरण प्रतिशत एवं फसल की प्रारंभिक वृद्धि बेहतर हो रही है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा “सीड विलेज कार्यक्रम”, प्रमाणित बीज वितरण तथा किसान ड्रोन तकनीक को बढ़ावा दिया जा रहा है। वर्तमान में किसान पारंपरिक बीजों के स्थान पर प्रमाणित एवं अनुसंधान आधारित

बीजों को अपनाने लगे हैं, जिससे उत्पादन, लाभ एवं कृषि की स्थिरता में निरंतर वृद्धि हो रही है। गुणवत्ता पूर्ण बीज का अर्थ ऐसे बीज जो शुद्ध, स्वस्थ, अंकुरण क्षमता वाले, रोगमुक्त तथा वैज्ञानिक मानकों के अनुरूप हों, उन्हें गुणवत्ता पूर्ण बीज कहा जाता है। इन बीजों में आनुवंशिक शुद्धता, भौतिक शुद्धता और उच्च उत्पादक क्षमता होती है।

गुणवत्ता पूर्ण बीजों की प्रमुख विशेषताएँ

1. उच्च अंकुरण क्षमता

गुणवत्तापूर्ण बीजों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी उच्च अंकुरण क्षमता होती है। प्रमाणित बीजों में सामान्यतः 80-90 प्रतिशत तक अंकुरण पाया जाता है, जिससे खेत में पौधों की संख्या समान बनी रहती है तथा फसल की वृद्धि एकरूप होती है। ऐसे बीजों से स्वस्थ, मजबूत एवं रोगरोधी पौधे विकसित होते हैं, जिससे पुनः बुवाई की आवश्यकता कम पड़ती है और उत्पादन में वृद्धि होती है। अंकुरण परीक्षण बीज गुणवत्ता का प्रमुख वैज्ञानिक परीक्षण है। इसके लिए 100 बीज गीले कपड़े या मिट्टी में रखकर 7-10 दिनों बाद अंकुरित बीजों की संख्या गिनी जाती है। कम अंकुरण खराब भंडारण, पुराना या नकली बीज होने का संकेत हो सकता है।

2. आनुवंशिक शुद्धता

गुणवत्तापूर्ण एवं प्रमाणित बीजों में सामान्यतः 95-99 प्रतिशत तक आनुवंशिक शुद्धता पाई जाती है, जिससे मूल प्रजाति के गुण सुरक्षित बने रहते हैं। इसके कारण फसल के पौधों की ऊँचाई, वृद्धि, फूल



सारणी - 1 वैज्ञानिक मानक	
अंकुरण प्रतिशत	बीज की गुणवत्ता
90 प्रतिशत या अधिक	उत्कृष्ट
80-89 प्रतिशत	अच्छी
70-79 प्रतिशत	सामान्य

एवं पकने की अवधि में समानता बनी रहती है। आनुवांशिक रूप से शुद्ध बीज बेहतर गुणवत्ता, अधिक उत्पादन तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करते हैं, जिससे किसानों को स्थिर एवं लाभकारी उपज प्राप्त होती है।

3- रोग एवं कीट रहित

उन्नत एवं गुणवत्तापूर्ण बीज सामान्यतः रोगजनकों तथा कीटों से मुक्त होते हैं, जिससे फसल की प्रारंभिक वृद्धि स्वस्थ एवं मजबूत होती है। ऐसे बीजों में बीजजनित रोगों का प्रकोप कम पाया जाता है, जिससे पौधों की मृत्यु दर घटती है। रोग एवं कीट रहित बीजों के उपयोग से कीटनाशकों पर होने वाला खर्च कम होता है तथा फसल उत्पादन एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

4- अधिक उत्पादन क्षमता

अच्छे एवं प्रमाणित बीजों के उपयोग से प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। ऐसे बीजों से पौधों की वृद्धि बेहतर होती है तथा उपज की गुणवत्ता में सुधार आता है। गुणवत्तापूर्ण बीज कृषि उत्पादन एवं किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5- प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता

कुछ उन्नत एवं गुणवत्तापूर्ण बीज सूखा, अधिक वर्षा, लवणीयता तथा तापमान परिवर्तन जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने में सक्षम होते हैं। ऐसे बीज जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में भी बेहतर वृद्धि एवं स्थिर उत्पादन प्रदान करते हैं। इससे फसल हानि का जोखिम कम होता है तथा किसानों को अधिक सुरक्षा एवं लाभ प्राप्त होता है।

कृषि विकास में गुणवत्ता पूर्ण बीजों का योगदान

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि

गुणवत्ता पूर्ण बीजों का सबसे बड़ा योगदान कृषि उत्पादन बढ़ाना है। यदि किसान उचित बीज का चयन करें, तो बिना अतिरिक्त भूमि के भी अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए-

(क) उन्नत गेहूँ की किस्में जैसे एचडी-2967, एचडी-3086, डीबीडब्ल्यू-187 तथा पीबीडब्ल्यू-550 पारंपरिक किस्मों की तुलना में लगभग 20-30 प्रतिशत अधिक उत्पादन देने में सक्षम हैं।

(ख) संकर धान की किस्में जैसे पीआरएच-10, अराइज-6444 गोल्ड एवं आरएच-749 तथा संकर मक्का की किस्में जैसे डीकेसी-9141, पीएमएच-1 एवं एचक्यूपीएम-1 अधिक उपज एवं बेहतर गुणवत्ता प्रदान करती हैं।

2. खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना

भारत की बढ़ती जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है। गुणवत्तायुक्त बीजों के प्रयोग से अनाज उत्पादन बढ़ता है, जिससे खाद्य सुरक्षा मजबूत होती है। हरित क्रांति के दौरान उच्च उत्पादक क्षमता वाली गेहूँ और धान की किस्मों ने भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया।

3. किसानों की आय में वृद्धि

उन्नत एवं गुणवत्तापूर्ण बीजों के उपयोग से उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ फसल की गुणवत्ता में भी सुधार होता है। ऐसे बीजों से प्राप्त उपज का आकार, रंग, चमक एवं पोषण गुणवत्ता बेहतर होती है, जिससे बाजार में अधिक मांग एवं अच्छा मूल्य प्राप्त होता है। गुणवत्तापूर्ण उत्पादन से किसानों की आय एवं लाभ में वृद्धि होती है।

आय वृद्धि के प्रमुख कारण

- ✓ अधिक उपज
- ✓ बेहतर गुणवत्ता
- ✓ रोगों पर कम खर्च
- ✓ बाजार में अधिक मांग

4. रोग एवं कीट नियंत्रण में सहायता

रोग प्रतिरोधी किस्मों के उपयोग से रासायनिक दवाओं एवं कीटनाशकों का प्रयोग कम करना पड़ता है। इससे उत्पादन लागत घटती है तथा पर्यावरण संरक्षण में भी सहायता मिलती है। रोग प्रतिरोधी बीज फसल को विभिन्न बीमारियों से सुरक्षित रखते हैं और स्थिर उत्पादन प्रदान करते हैं। उदाहरण-

- झुलसा रोग प्रतिरोधी आलू की किस्में - कुफरी ज्योति, कुफरी पुष्कर एवं कुफरी गरिमा।
- पीला रतुआ प्रतिरोधी गेहूँ की किस्में - एचडी-2967, डीबीडब्ल्यू-303 एवं पीबीडब्ल्यू-723।

5. जलवायु परिवर्तन से मुकाबला

आज जलवायु परिवर्तन कृषि के लिए गंभीर चुनौती बन चुका है। सूखा, बाढ़, तापमान वृद्धि तथा अनियमित वर्षा के कारण फसल उत्पादन प्रभावित हो रहा है। ऐसी परिस्थितियों में वैज्ञानिकों द्वारा विकसित सूखा सहनशील, अल्प अवधि एवं अधिक ताप सहनशील किस्में कृषि को स्थिर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। ये



उन्नत बीज प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बेहतर उत्पादन देकर किसानों की जोखिम को कम करने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

6. प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण

गुणवत्तापूर्ण बीजों के प्रयोग से प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण सम्भव होता है। उन्नत एवं जलवायु अनुकूल बीज कम पानी में भी अधिक उत्पादन देते हैं तथा उर्वरकों का बेहतर उपयोग करते हैं। भारत में 2025 के अध्ययनों के अनुसार सुस्थिर कृषि तकनीकों से मिट्टी की उर्वरा शक्ति, जैव गतिविधि एवं जल उपयोग दक्षता में महत्वपूर्ण सुधार देखा गया है। इसी के साथ भारतीय मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी को देखते हुए गुणवत्तापूर्ण बीज एवं संतुलित पोषण प्रबंधन पर जोर दिया जा रहा है।

सारणी - 2. बीजों के प्रकार

बीज का प्रकार	विशेषता	टैग का रंग
नाभिक बीज	सर्वाधिक शुद्ध एवं मूल बीज, वैज्ञानिकों द्वारा संरक्षित	कोई टैग नहीं
मूल बीज	नाभिक बीज से तैयार, उच्च आनुवंशिक शुद्धता	सुनहरा पीला
आधार बीज	मूल बीज से तैयार, प्रमाणित बीज उत्पादन हेतु उपयोग	सफेद
प्रमाणित बीज	किसानों के उपयोग हेतु प्रमाणित बीज	नीला
सत्यापित बीज	उत्पादक संस्था द्वारा गुणवत्ता घोषित बीज	ओपल ग्रीन
संकर बीज	दो श्रेष्ठ किस्मों के संकरण से विकसित उच्च उत्पादक बीज	सामान्यतः संबंधित श्रेणी के अनुसार टैग कोई टैग नहीं

गुणवत्ता पूर्ण बीज उत्पादन की वैज्ञानिक विधियाँ

1. उपयुक्त भूमि का चयन- बीज उत्पादन हेतु शुद्ध एवं उपजाऊ भूमि का चयन आवश्यक है।
2. पृथक्करण दूरी बनाए रखना- अन्य किस्मों से पराग मिश्रण रोकने के लिए निश्चित दूरी रखना आवश्यक है।
3. रोगग्रस्त पौधों को हटाना- बीज खेत में रोगी पौधों को समय-समय पर निकालना चाहिए।

4. उचित कटाई एवं भंडारण- बीजों को सही नमी स्तर पर सुखाकर सुरक्षित भंडारण करना चाहिए।

गुणवत्ता परीक्षण का महत्व

बीजों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न परीक्षण किए जाते हैं। इन परीक्षणों से किसान अच्छे बीजों की पहचान कर सकते हैं।

1. अंकुरण परीक्षण- अंकुरण परीक्षण द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि बीज से स्वस्थ पौधे बनने की क्षमता कितनी है। इस परीक्षण में निर्धारित तापमान, नमी एवं प्रकाश की परिस्थितियों में बीजों को अंकुरित किया जाता है। अंकुरण प्रतिशत जितना अधिक होता है, बीज की गुणवत्ता उतनी ही अच्छी मानी जाती है। वैज्ञानिक मानकों के अनुसार अधिकांश फसलों में न्यूनतम 75-85 प्रतिशत अंकुरण आवश्यक माना जाता है।

2. नमी परीक्षण- नमी परीक्षण द्वारा बीज में उपस्थित जल की मात्रा का निर्धारण किया जाता है। अधिक नमी होने पर बीज में फफूँद, कीट एवं अंकुरण हानि की संभावना बढ़ जाती है। सुरक्षित भंडारण हेतु सामान्यतः बीज में 8-12 प्रतिशत नमी उपयुक्त मानी जाती है। यह परीक्षण बीज की भंडारण क्षमता एवं दीर्घकालीन गुणवत्ता बनाए रखने में महत्वपूर्ण होता है।

3. शुद्धता परीक्षण- शुद्धता परीक्षण में यह जाँचा जाता है कि बीज में अन्य फसलों के बीज, खरपतवार बीज, टूटे बीज अथवा अशुद्ध पदार्थ कितनी मात्रा में उपस्थित हैं। इस परीक्षण से बीज की भौतिक एवं आनुवंशिक शुद्धता का मूल्यांकन किया जाता है। उच्च गुणवत्ता वाले बीज में शुद्धता सामान्यतः 98 प्रतिशत या उससे अधिक रखी जाती है।

4. रोग परीक्षण- रोग परीक्षण का उद्देश्य बीज में उपस्थित रोगजनकों, फफूँद, बैक्टीरिया अथवा विषाणुओं की पहचान करना होता है। रोगग्रस्त बीज से फसल की वृद्धि एवं उत्पादन प्रभावित हो सकता है। वैज्ञानिक विधियों द्वारा बीज की जाँच कर यह सुनिश्चित किया जाता है कि बीज रोगमुक्त एवं स्वस्थ हो। रोग परीक्षण से स्वस्थ फसल उत्पादन एवं रोग नियंत्रण में सहायता मिलती है।

भारत में बीज विकास कार्यक्रम

भारत सरकार द्वारा गुणवत्तायुक्त बीजों के प्रसार हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य किसानों तक उन्नत बीज पहुँचाना है।

प्रमुख योजनाएँ

- राष्ट्रीय बीज निगम
- बीज ग्राम योजना
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन



- प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना से समन्वित बीज कार्यक्रम
- कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा बीज वितरण

गुणवत्ता पूर्ण बीज उपयोग में आने वाली समस्याएँ

1. **उन्नत बीजों की ऊँची कीमत-** छोटे एवं सीमांत किसान महंगे बीज खरीदने में कठिनाई अनुभव करते हैं।
2. **जागरूकता की कमी-** कई किसानों को प्रमाणित बीजों के लाभों की जानकारी नहीं होती।
3. **नकली बीजों की समस्या-** बाजार में मिलावटी एवं नकली बीज किसानों को नुकसान पहुँचाते हैं।
4. **समय पर उपलब्धता का अभाव-** बीजों की मांग अधिक होने पर समय पर उपलब्धता प्रभावित होती है।

समाधान एवं सुझाव

1. **प्रमाणित बीजों का उपयोग बढ़ाना-** किसानों को केवल प्रमाणित एवं विश्वसनीय स्रोतों से बीज खरीदने चाहिए।
2. **सरकारी सहायता-** सरकार को बीजों पर सब्सिडी तथा बीज वितरण प्रणाली मजबूत करनी चाहिए।
3. **किसान प्रशिक्षण-** कृषि विभाग एवं कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा किसानों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
4. **स्थानीय बीज उत्पादन को बढ़ावा-** गाँव स्तर पर बीज उत्पादन कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
5. **अनुसंधान एवं नवाचार-** नई जलवायु सहनशील एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्मों का विकास आवश्यक है।

टिकाऊ कृषि में गुणवत्ता पूर्ण बीजों की भूमिका

टिकाऊ कृषि का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए दीर्घकाल तक कृषि उत्पादन बनाए रखना है। गुणवत्तापूर्ण बीज इस

लक्ष्य को प्राप्त करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उन्नत एवं स्वस्थ बीजों के उपयोग से फसल की वृद्धि बेहतर होती है तथा उत्पादन क्षमता बढ़ती है। इससे रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का उपयोग कम करना संभव होता है, जिससे पर्यावरण प्रदूषण घटता है। गुणवत्तायुक्त बीज जल उपयोग दक्षता बढ़ाकर जल संरक्षण में भी सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त होने से किसानों की आय में वृद्धि होती है तथा पोषण सुरक्षा एवं खाद्य सुरक्षा को भी मजबूती मिलती है।

निष्कर्ष

गुणवत्ता पूर्ण बीज आधुनिक कृषि विकास की मूल आधारशिला हैं। ये न केवल कृषि उत्पादन बढ़ाते हैं, बल्कि किसानों की आय, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण संरक्षण तथा टिकाऊ कृषि विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। वर्तमान समय में जब कृषि जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण तथा बढ़ती जनसंख्या जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है, तब उन्नत एवं प्रमाणित बीजों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। यदि किसानों को समय पर गुणवत्तायुक्त बीज उपलब्ध कराए जाएँ, उचित प्रशिक्षण दिया जाए तथा वैज्ञानिक खेती को बढ़ावा दिया जाए, तो भारत कृषि क्षेत्र में और अधिक प्रगति कर सकता है। अतः कृषि विकास एवं आत्मनिर्भर भारत के निर्माण हेतु गुणवत्ता पूर्ण बीजों का उपयोग अत्यंत आवश्यक है।



गेंदा लगाए आय बढ़ाएं

नितिल कुमार श्रीवास्तव- पी.एच.डी. शोधार्थी, उद्यान विभाग, महाराजा सुहेल देव विश्वविद्यालय आजमगढ़, उत्तर प्रदेश
अमर नाथ जायसवाल- पी.एच.डी. शोधार्थी, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर उत्तर प्रदेश

वर्तमान में जिस तेजी के साथ फूलों की मांग बढ़ रही है। आने वाले समय में फूलों की खेती एक बड़ी व्यवसाय के संसाधन बन के उभर रही है। यह किसानों के लिए बेहद फायदे का सौदा साबित हो रहा है। किसान अगर गेंदे की खेती करे तो वह अन्य फसलों के मुकाबले ज्यादा मुनाफा कमा सकते हैं। गेंदा की खूबसूरती सभी को लुभाती है यही वजह है कि विशेष अवसर पर सजावट के लिए गेंदे के फूलों का खास महत्व है। गेंदा के फूलों की अहमियत इस वजह से भी ज्यादा है क्योंकि ये फूल दूसरों फूलों की तुलना में सस्ते मिलते हैं और आसानी से मिल भी जाते हैं।

भूमि कि तैयारी

गेंदे की अधिक पैदावार के लिए 6.5-7.5 पीएच वाली बलुई दोमट मिट्टी से चिकनी मिट्टी अच्छी जल निकास का प्रबंध होना अति आवश्यक है। खेत को 2-3 बार जोतकर महीन मिट्टी तैयार करें। अंतिम जुताई के समय 15-20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद तथा साथ ही दीमक एवं अन्य कीटों से बचाव हेतु 4-5 कुंतल नीम की खली मिला देते हैं। पौधों को रोपड़ से पूर्व खेत को छोटी-छोटी क्यारियों में बाट लेते हैं। जिसे सिंचाई तथा अन्य कार्यों में आसानी रहती है।

बीज दर

एक हेक्टेयर के लिए सामान्यतः 1.5 किग्रा बीज पर्याप्त होता है। वही संकर प्रजाति का बीज प्रयोग करने पर 200-250 ग्राम प्रति हेक्टेयर बीज पर्याप्त होता है। बुवाई के लिए ताजे फूलों से प्राप्त बीज जमाव के लिए बेहतर होता है।

प्रजाति

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रमुख प्रजातियां उपलब्ध हैं जिनकी पैदावार काफी ज्यादा है – पूसा नारंगी, पूसा बसंती, पूसा डीप, पूसा अर्पिता।

नर्सरी प्रबंधन

गेंदे की नर्सरी मौसम के अनुसार बीज को 10-15 सेमी उचाई, 75-100 सेमी चौड़ी व आवश्यकतानुसार 2-3 मीटर लम्बी क्यारियों में बुवाई करते हैं। बीजों को 2.5 ग्राम थिरम/कार्बेन्डाजिम से उपचारित करें। बीजों को 1-2 सेमी गहराई पर बुवाई करके गोबर की खाद से ढककर, हजारों से पानी देते रहते हैं। नर्सरी में अधिक जल भराव नहीं होनी चाहिए।



बीज 5-10 दिनों में अंकुरण और 20-25 दिनों में रोपाई के लिए तैयार हो जाता है।

खाद एवं उर्वरक

15-20 टन सड़ी गोबर की खाद के अतिरिक्त 110-120 किग्रा नत्रजन, 80 किग्रा फास्फोरस एवं 80 किग्रा पोटैश प्रति हेक्टेयर की दर से गेंदा को आवश्यकता होता है। फास्फोरस एवं पोटैश की पूर्ण मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा को अंतिम जुताई के समय खेत में डाल कर मिला देते हैं। तथा शेष नत्रजन की आधी मात्रा को दो बार में टॉपड्रेसिंग के द्वारा खेत में डाल देते हैं। इसके अतिरिक्त खेत में 4-5 किग्रा जिंक सल्फेट का प्रयोग पौधों की गुणवत्ता को बढ़ाने में मददगार होता है।

सिंचाई

अच्छे उत्पादन के लिए खेत में नमी रहना अति आवश्यक होता है। गर्मियों में 4-5 दिनों के अंतराल पर तथा सर्दियों में 10-12 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। मिट्टी की एक इंच

परत सूखी लगे तब सिंचाई कर देनी चाहिए। खेत में अधिक जल भराव होने पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

अन्य सस्य क्रियायें

रोपड़ के बाद खेत में समय-समय पर खुरपी की सहायता से खरपतवारों को निकालते रहना चाहिए। पौधों में अधिक शाखाओं के विकास हेतु कटाई-छटाई करते रहना चाहिए। पहली गुड़ाई के समय या फूल आने से पहले पौधों की जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए जिससे पौधों को सहारा मिलता है और वे गिरते नहीं हैं।

उत्पादन

गेंदे की फूलों को अच्छे तरह से देखभाल किया जाए, समय-समय पर सिंचाई किया जाए, तथा विशेष रूप से शाखाओं को बढ़ाने के लिए पिंचिंग तकनीक को अपनाया जाए तो प्रति हेक्टेयर 20-25 टन ताजे फूल प्राप्त होते हैं।





साहीवाल गायों में सहजन (*Moringa oleifera*) का महत्व: पोषण, दुग्ध उत्पादन एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव

डॉ. ज्ञान दीपक कुमार- पीएच.डी. (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन),

डॉ. बृजेश सिंह- प्रोफेसर, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग

गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड

भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है, फिर भी दुग्धरू पशुओं को संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण पोषण उपलब्ध कराना आज भी एक बड़ी चुनौती है। पशु आहार की बढ़ती लागत, हरे चारे की कमी तथा पोषक तत्वों की अपर्याप्त उपलब्धता के कारण पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में सहजन (*Moringa oleifera*) एक उपयोगी एवं कम लागत वाला प्राकृतिक पूरक आहार के रूप में उभरकर सामने आया है। इसकी पत्तियाँ उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, विटामिन, खनिज तत्वों तथा एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होती हैं। विभिन्न अध्ययनों से संकेत मिलता है कि सहजन का उपयोग दुग्ध उत्पादन, दुग्ध गुणवत्ता, प्रतिरक्षा क्षमता तथा समग्र स्वास्थ्य में सुधार लाने में सहायक हो सकता है। प्रस्तुत लेख में दुग्धरू पशुओं, विशेषकर साहीवाल गायों में सहजन के पोषणीय महत्व, स्वास्थ्य लाभ एवं व्यावहारिक उपयोग पर चर्चा की गई है।

परिचय

भारत में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है। लाखों किसान कृषि के साथ-साथ डेयरी व्यवसाय से अपनी आय प्राप्त करते हैं। बढ़ती जनसंख्या एवं दुग्ध उत्पादों की मांग को देखते

हुए पशुओं की उत्पादकता बढ़ाना समय की आवश्यकता है। इसके लिए संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण पोषण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

वर्तमान समय में पशुपालकों के सामने सबसे बड़ी समस्याओं में हरे चारे की कमी, महंगा पशु आहार तथा उत्पादन लागत में निरंतर वृद्धि शामिल है। ऐसे में किसान ऐसे वैकल्पिक संसाधनों की तलाश कर रहे हैं जो कम लागत में बेहतर पोषण उपलब्ध करा सकें। इसी संदर्भ में सहजन (*Moringa oleifera*) का महत्व तेजी से बढ़ा है।

सहजन, जिसे ड्रमस्टिक ट्री या मिरेकल ट्री भी कहा जाता है, एक बहुउपयोगी पौधा है। इसकी पत्तियाँ प्रोटीन, कैल्शियम, आयरन, विटामिन A, C एवं E सहित अनेक आवश्यक पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कई प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट एवं जैव सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जो पशुओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

सहजन की एक विशेषता यह भी है कि इसे किसान अपने खेतों की मेड़ों अथवा खाली भूमि पर आसानी से उगा सकते हैं। कम लागत में उपलब्ध होने के कारण यह पशुपालकों के लिए एक उपयोगी पूरक आहार का विकल्प बन सकता है। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में



पशु पोषण वैज्ञानिकों ने दुग्धरू पशुओं में इसके उपयोग पर विशेष ध्यान दिया है।

विशेष रूप से साहीवाल जैसी देशी दुग्ध नस्लों में सहजन का उपयोग महत्वपूर्ण माना जा रहा है। उचित मात्रा में इसके उपयोग से पशुओं के स्वास्थ्य, उत्पादन क्षमता तथा पोषण स्तर में सुधार की संभावना व्यक्त की गई है। इसलिए सहजन को टिकाऊ एवं लाभकारी डेयरी विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन माना जा रहा है।

सहजन (*Moringa oleifera*) का पोषण महत्व एवं विशेषताएँ

सहजन (*Moringa oleifera*) एक बहुउपयोगी पौधा है, जिसे उसके उच्च पोषण मूल्य के कारण "मिरेकल ट्री" भी कहा जाता है। यह पौधा भारत सहित अनेक उष्णकटिबंधीय देशों में पाया जाता है और कम पानी तथा सीमित संसाधनों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। यही कारण है कि यह किसानों के लिए एक सस्ता एवं टिकाऊ पोषण स्रोत माना जाता है।



चित्र 1. सहजन (*Moringa oleifera*) का पौधा।

सहजन की पत्तियाँ उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का अच्छा स्रोत हैं। इनमें आवश्यक अमीनो अम्ल भी पाए जाते हैं, जो पशुओं की वृद्धि, ऊतक निर्माण तथा दूध उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त सहजन की पत्तियों में कैल्शियम, फास्फोरस, पोटैशियम, मैग्नीशियम, आयरन, जिंक एवं कॉपर जैसे आवश्यक खनिज तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

विटामिनों की दृष्टि से भी सहजन अत्यंत समृद्ध है। इसकी पत्तियों में विटामिन A, विटामिन C तथा विटामिन E प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ये विटामिन शरीर की सामान्य क्रियाओं को सुचारू रखने, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने तथा विभिन्न प्रकार के तनावों से पशुओं की रक्षा करने में सहायक होते हैं।

सहजन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसमें पाए जाने वाले प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट एवं जैव सक्रिय यौगिक हैं। इनमें फ्लेवोनॉयड्स,

फेनोलिक यौगिक तथा अन्य लाभकारी तत्व शामिल हैं, जो शरीर में मुक्त कणों के दुष्प्रभाव को कम करने में सहायता करते हैं। इससे पशुओं के स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

पारंपरिक चारा संसाधनों की तुलना में सहजन का एक अन्य लाभ इसकी अच्छी पाच्यता है। पशु इसकी कोमल पत्तियों को आसानी से खा लेते हैं और उनमें उपस्थित पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग कर पाते हैं। यही कारण है कि इसे केवल एक चारा फसल नहीं, बल्कि एक उपयोगी प्राकृतिक फीड सप्लीमेंट भी माना जाता है।

वर्तमान समय में जब पशु आहार की लागत लगातार बढ़ रही है और गुणवत्तापूर्ण चारे की कमी बनी हुई है, तब सहजन किसानों के लिए एक व्यवहारिक विकल्प प्रस्तुत करता है। इसकी खेती सरल है, उत्पादन लागत कम है और पोषण मूल्य अत्यधिक है। इसलिए इसे भविष्य के टिकाऊ एवं लाभकारी डेयरी पशुपालन का एक महत्वपूर्ण घटक माना जा रहा है।

दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध गुणवत्ता पर सहजन का प्रभाव

दुग्धरू पशुओं की उत्पादकता मुख्य रूप से उनके पोषण स्तर पर निर्भर करती है। यदि पशुओं को संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण आहार उपलब्ध कराया जाए तो उनकी दूध उत्पादन क्षमता तथा स्वास्थ्य दोनों में सुधार किया जा सकता है। इसी कारण सहजन (*Moringa oleifera*) को डेयरी पशुओं के लिए एक उपयोगी प्राकृतिक पूरक आहार माना जा रहा है।

सहजन की पत्तियाँ उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, खनिज तत्वों तथा विटामिनों से भरपूर होती हैं। ये सभी पोषक तत्व दूध संश्लेषण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब पशुओं को संतुलित आहार के साथ सहजन उपलब्ध कराया जाता है, तो शरीर में पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है, जिससे दुग्ध उत्पादन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है कि सहजन आधारित पूरक आहार पशुओं की आहार ग्रहण क्षमता तथा पोषक तत्वों की उपयोगिता में सुधार कर सकता है। जब पशु अधिक मात्रा में पौष्टिक आहार ग्रहण करते हैं, तो उन्हें पर्याप्त ऊर्जा एवं प्रोटीन प्राप्त होते हैं, जिसका सीधा प्रभाव दूध उत्पादन पर पड़ता है। यही कारण है कि कई शोधकर्ताओं ने सहजन को प्राकृतिक दुग्धवर्धक (Natural Galactagogue) के रूप में भी वर्णित किया है।

दूध की मात्रा के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता भी अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। वर्तमान समय में उपभोक्ता बेहतर गुणवत्ता वाले दूध की अपेक्षा करते हैं। दूध की गुणवत्ता का मूल्यांकन मुख्य रूप से वसा



(Fat), प्रोटीन, एसएनएफ (SNF) तथा कुल ठोस पदार्थों के आधार पर किया जाता है। कई अध्ययनों से संकेत मिले हैं कि सहजन का उपयोग इन गुणवत्ता मानकों को बनाए रखने अथवा उनमें सुधार करने में सहायक हो सकता है।

सहजन में उपस्थित कैल्शियम, फास्फोरस तथा अन्य खनिज तत्व दुग्ध उत्पादन के दौरान शरीर से होने वाली पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने में सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें पाए जाने वाले एंटीऑक्सीडेंट तत्व पशुओं में चयापचयी तनाव को कम करने में सहायक हो सकते हैं, जिससे उनकी उत्पादन क्षमता बेहतर बनी रहती है।

साहीवाल जैसी उच्च दुग्ध क्षमता वाली देशी नस्लों में सहजन का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। यदि ऐसी गायों को संतुलित आहार के साथ सहजन आधारित पूरक उपलब्ध कराया जाए, तो उनकी उत्पादन क्षमता का बेहतर उपयोग किया जा सकता है। साथ ही किसानों की महंगे व्यावसायिक पूरक आहारों पर निर्भरता भी कुछ हद तक कम हो सकती है।

इस प्रकार सहजन न केवल दुग्ध उत्पादन बढ़ाने की क्षमता रखता है, बल्कि दूध की गुणवत्ता बनाए रखने तथा उत्पादन लागत को नियंत्रित करने में भी उपयोगी भूमिका निभा सकता है। यही कारण है कि इसे टिकाऊ डेयरी विकास के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन माना जा रहा है।

पशुओं के स्वास्थ्य एवं प्रतिरक्षा पर सहजन का प्रभाव

दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ पशुओं का स्वस्थ रहना भी डेयरी व्यवसाय की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है। स्वस्थ पशु न केवल अधिक उत्पादन देते हैं, बल्कि उनकी प्रजनन क्षमता, रोग प्रतिरोधकता तथा कार्यक्षमता भी बेहतर बनी रहती है। इसी कारण वर्तमान समय में पशुओं के स्वास्थ्य सुधार के लिए प्राकृतिक एवं सुरक्षित विकल्पों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। सहजन (*Moringa oleifera*) इस दिशा में एक महत्वपूर्ण हर्बल फीड सप्लीमेंट के रूप में उभरकर सामने आया है।

सहजन की पत्तियाँ प्रोटीन, खनिज तत्वों एवं विटामिनों के साथ-साथ अनेक जैव सक्रिय यौगिकों से भरपूर होती हैं। इनमें उपस्थित आयरन, कॉपर तथा अन्य पोषक तत्व रक्त निर्माण की प्रक्रिया में सहायक होते हैं। पर्याप्त पोषण मिलने से पशुओं की सामान्य शारीरिक स्थिति बेहतर बनी रहती है तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की संभावना कम हो सकती है।

सहजन में पाए जाने वाले विटामिन A, C एवं E शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये

विटामिन विभिन्न रोगों एवं संक्रमणों के विरुद्ध शरीर की प्राकृतिक रक्षा प्रणाली को सक्रिय बनाए रखने में सहायता करते हैं। इसी कारण सहजन आधारित पूरक आहार पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में उपयोगी माना जाता है।

आधुनिक डेयरी पशुपालन में गर्मी का तनाव, परिवहन, प्रसवोत्तर दबाव तथा उच्च दुग्ध उत्पादन जैसी परिस्थितियाँ पशुओं के शरीर पर अतिरिक्त प्रभाव डालती हैं। ऐसे समय में शरीर में ऑक्सीडेटिव तनाव बढ़ सकता है, जिससे स्वास्थ्य एवं उत्पादन दोनों प्रभावित हो सकते हैं। सहजन में उपस्थित प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट तत्व इस तनाव को कम करने में सहायता करते हैं और शरीर की कोशिकाओं को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

पाचन तंत्र का स्वास्थ्य भी पशुओं की उत्पादकता से सीधे जुड़ा होता है। यदि पशु चारे का सही उपयोग नहीं कर पाते, तो उन्हें पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता। सहजन की पत्तियाँ आसानी से पचने योग्य होती हैं तथा इनमें उपस्थित पोषक तत्व शरीर द्वारा प्रभावी रूप से उपयोग किए जा सकते हैं। इससे पशुओं की पोषण स्थिति एवं कार्यक्षमता बेहतर बनी रह सकती है।

कई वैज्ञानिक अध्ययनों में यह पाया गया है कि सहजन आधारित पूरक आहार पशुओं के रक्त एवं जैवरासायनिक मानकों पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। इससे शरीर की सामान्य स्वास्थ्य स्थिति बनाए रखने में सहायता मिलती है। यही कारण है कि पशु पोषण विशेषज्ञ सहजन को केवल पोषण पूरक नहीं, बल्कि स्वास्थ्य संवर्धक फीड एडिटिव के रूप में भी देखते हैं।

साहीवाल जैसी देशी नस्लों में, जो अपनी अच्छी रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए जानी जाती हैं, सहजन का उपयोग स्वास्थ्य स्तर को और बेहतर बनाने में योगदान दे सकता है। बेहतर स्वास्थ्य का सीधा प्रभाव दुग्ध उत्पादन, प्रजनन क्षमता तथा किसानों की आर्थिक आय पर पड़ता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सहजन (*Moringa oleifera*) पशुओं के स्वास्थ्य संरक्षण, प्रतिरक्षा क्षमता वृद्धि तथा तनाव प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की क्षमता रखता है। यही विशेषताएँ इसे आधुनिक एवं टिकाऊ डेयरी पशुपालन के लिए एक उपयोगी प्राकृतिक संसाधन बनाती हैं।

साहीवाल गायों में सहजन के उपयोग की व्यावहारिक विधि एवं किसानों के लिए सुझाव

वैज्ञानिक अध्ययनों में सहजन (*Moringa oleifera*) के पोषण एवं स्वास्थ्य संबंधी लाभों की पुष्टि होने के बाद यह जानना



आवश्यक है कि किसान इसका उपयोग अपने पशुओं के आहार में किस प्रकार करें। सहजन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे किसान स्वयं अपने खेतों, मेड़ों अथवा पशुशाला के आसपास उपलब्ध भूमि पर आसानी से उगा सकते हैं। एक बार पौधा स्थापित हो जाने पर कई वर्षों तक इसकी पत्तियाँ एवं कोमल शाखाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

साहीवाल जैसी देशी दुग्ध नस्लों में सहजन का उपयोग हरे चारे, सूखी पत्ती चूर्ण (Leaf Meal) अथवा दाना मिश्रण के साथ मिलाकर किया जा सकता है। हरी एवं कोमल पत्तियाँ पशु सामान्यतः आसानी से खा लेते हैं। यदि पत्तियों को छाया में सुखाकर चूर्ण तैयार कर लिया जाए, तो वर्षभर इसका उपयोग किया जा सकता है। यह विधि विशेष रूप से उन क्षेत्रों में उपयोगी है जहाँ हरे चारे की उपलब्धता मौसमी होती है।

सहजन को पशुओं के आहार में धीरे-धीरे शामिल करना चाहिए। किसी भी नए पूरक आहार की तरह इसकी मात्रा एकदम से अधिक नहीं बढ़ानी चाहिए। धीरे-धीरे उपयोग करने से पशु इसकी आदत विकसित कर लेते हैं और पाचन संबंधी समस्याओं की संभावना भी कम रहती है।

किसानों को यह समझना चाहिए कि सहजन संतुलित आहार का विकल्प नहीं है, बल्कि एक पूरक आहार है। इसलिए इसका उपयोग हमेशा संतुलित राशन, पर्याप्त हरे चारे तथा स्वच्छ पेयजल के साथ ही किया जाना चाहिए। केवल सहजन खिलाने से अपेक्षित लाभ प्राप्त नहीं होंगे।

वर्तमान समय में पशु आहार की लागत डेयरी उत्पादन की कुल लागत का बड़ा भाग होती है। यदि किसान अपने स्तर पर सहजन की खेती करते हैं, तो वे महंगे व्यावसायिक पूरक आहारों पर निर्भरता को कुछ हद तक कम कर सकते हैं। इससे उत्पादन लागत कम करने तथा लाभप्रदता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

सहजन की खेती का एक अतिरिक्त लाभ यह भी है कि इसकी फलियाँ, पत्तियाँ एवं अन्य भाग विभिन्न उपयोगों में काम आते हैं। इससे किसानों को पशु पोषण के साथ-साथ अतिरिक्त आय के अवसर भी प्राप्त हो सकते हैं। यही कारण है कि सहजन को बहुउपयोगी एवं लाभकारी पौधे के रूप में देखा जाता है।

किसानों के लिए मुख्य संदेश

- ✓ सहजन की पत्तियाँ प्रोटीन, खनिज तत्वों एवं विटामिनों का अच्छा स्रोत हैं।
- ✓ इसे हरे चारे, सूखी पत्ती चूर्ण अथवा दाना मिश्रण के साथ उपयोग किया जा सकता है।

- ✓ संतुलित मात्रा में उपयोग करने पर यह पशुओं के स्वास्थ्य एवं दुग्ध उत्पादन में सहायक हो सकता है।
- ✓ सहजन की खेती कम लागत में खेत की मेड़ों एवं खाली भूमि पर आसानी से की जा सकती है।
- ✓ यह महंगे व्यावसायिक पूरक आहारों पर निर्भरता कम करने में सहायक हो सकता है।
- ✓ साहीवाल सहित अन्य दुग्धरू पशुओं के लिए यह एक उपयोगी प्राकृतिक फीड संसाधन है।

निष्कर्ष

भारत में डेयरी क्षेत्र किसानों की आय, ग्रामीण रोजगार एवं पोषण सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण आधार है। बढ़ती उत्पादन लागत, गुणवत्तापूर्ण चारे की कमी तथा पशुओं के स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों को देखते हुए ऐसे वैकल्पिक पोषण स्रोतों की आवश्यकता है जो कम लागत में अधिक लाभ प्रदान कर सकें। सहजन (*Moringa oleifera*) इस दिशा में एक महत्वपूर्ण एवं संभावनाशील विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है।

सहजन की पत्तियाँ उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, आवश्यक अमीनो अम्ल, खनिज तत्वों, विटामिनों तथा प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होती हैं। यही कारण है कि इसे केवल एक चारा फसल नहीं, बल्कि एक उपयोगी हर्बल फीड सप्लीमेंट भी माना जाता है। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि सहजन का उपयोग दुग्ध उत्पादन, दुग्ध गुणवत्ता, प्रतिरक्षा क्षमता तथा पशुओं के समग्र स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

साहीवाल जैसी देशी दुग्ध नस्लों के लिए सहजन का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। यह न केवल पशुओं को बेहतर पोषण प्रदान कर सकता है, बल्कि उत्पादन लागत कम करने तथा टिकाऊ डेयरी विकास को बढ़ावा देने में भी सहायक हो सकता है। इसकी खेती सरल, कम लागत वाली तथा बहुउपयोगी है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आर्थिक लाभ की संभावना भी रहती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सहजन (*Moringa oleifera*) भविष्य के टिकाऊ एवं लाभकारी डेयरी पशुपालन के लिए एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। यदि इसका उपयोग वैज्ञानिक एवं संतुलित तरीके से किया जाए, तो यह साहीवाल सहित अन्य दुग्धरू पशुओं की उत्पादकता, स्वास्थ्य तथा किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।



सब्जियों के फसलों में नमी तनाव का प्रबंधन

डा० सुनील कुमार मंडल

सहायक प्राध्यापक -सह- वैज्ञानिक,
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर, मधुवनी, बिहार

नमी तनाव, जिसे जलतनाव भी कहा जाता है, एक ऐसी परिस्थिति है जिसमें पौधों को स्वस्थ विकास और शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए आवश्यक पानी की कमी हो जाती है। ऐसा तब होता है, जब मिट्टी में पौधों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त पानी नहीं होता है। प्रकाश-संश्लेषण, नत्रजन ग्रहण और वास्पोत्सर्जन सहित कई महत्वपूर्ण पादप कार्यों के लिए पानी आवश्यक है। पादप कोशिकाओं को फूला हुआ रखना, उनकी संरचनात्मक अखंडता को बनाए रखना और पूरे पौधों में पोषक तत्वों और कार्बोहाइड्रेट के संचालन के संभव बनाना, ये सभी जल के द्वारा ही संभव होते हैं।

नमी की कमी होने पर पौधे, ये जरूरी काम नहीं कर पाते। उन्हें मिट्टी से पानी सोखने में दिक्कत हो सकती है। फलस्वरूप, पौधों की सामान्य वृद्धि और विकास बाधित हो सकता है, जिसका उनके उत्पादन, गुणवत्ता और सामान्य स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है। सब्जियाँ के फसल की सफल वृद्धि सुनिश्चित करने के लिए नमी की कमी का प्रबंधन आवश्यक है। किसानों और बागवानों को नमी की कमी के कारणों और प्रभावों को जानकर अपनी फसलों के लिए आवश्यक नमी की आपूर्ति के लिए प्रभावी उपायों को अपना सकते हैं और पानी की कमी से जुड़े सभी नकारात्मक परिणामों को कम कर सकते हैं।

नमी तनाव के कारण:

1. अपर्याप्त वर्षा या अप्रत्याशित वर्षा का स्वरूप: अपर्याप्त या अप्रत्याशित वर्षा के कारण सब्जियों की फसलों को नमी की कमी का सामना करना पड़ सकता है। यदि पौधों को पर्याप्त पानी नहीं मिल रहा है, तो उचित सिंचाई की तकनीकों के साथ प्राकृतिक वर्षा को बढ़ाना बेहद जरूरी है।

2. अपर्याप्त मृदा जल निकासी के कारण जल भराव या संघनन: जल भराव एक ऐसी स्थिति है जिसमें जड़ों के आस-पास पानी जमा हो जाता है और प्रभावी वायु संचार में बाधा उत्पन्न होती है। फलस्वरूप जड़ें दब सकती हैं और पानी को कुशलतापूर्वक अवशोषित करने की उसकी क्षमता कम हो सकती है। संघनन मिट्टी में जड़ों के विकास और पानी के प्रवेश को भी बाधित करती है, जिससे नमी का तनाव बढ़ जाता है।

3. उच्च तापमान और अत्यधिक वाष्पीकरण: गर्म मौसम और उच्च तापमान मिट्टी की सतह से पानी के वाष्पीकरण की गति को तेज कर देते हैं। परिणामस्वरूप, सब्जियों की फसलों को नमी की कमी का सामना करना पड़ सकता है और मिट्टी शुष्क हो सकती है। यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि गर्मी के मौसम में पौधों को पर्याप्त पानी मिले, ताकि वाष्पीकरण में वृद्धि की भरपाई हो सके।

4. संयंत्रों की अधिकता से जल संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा का बढ़ना: जब पौधे एक-दूसरे के बहुत पास-पास उगते हैं, तो वे मिट्टी की कम पानी की आपूर्ति के लिए आपस में पौधे संघर्ष करते हैं। जैसे-जैसे पौधे एक-दूसरे से घिरे होते हैं, तो पानी के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ती जाती है, जिससे नमी का तनाव पैदा हो सकता है। प्रत्येक पौधे को पर्याप्त नमी प्राप्त करने और अत्यधिक तीव्र प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए, उचित दूरी और पौधों का जनसंख्या घनत्व महत्वपूर्ण है।

सब्जी की फसलों में नमी के तनाव स्तर का प्रभाव:

सब्जी की फसलें नमी के दबाव के कई नकारात्मक प्रभावों के प्रति संवेदनशील होती हैं। इन प्रभावों से फसलों की सामान्य लाभ, उत्पादकता और गुणवत्ता, सभी पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है और ये प्रभाव कई अलग-अलग रूपों में हो सकते हैं। सब्जी की फसलों पर नमी के दबाव के कुछ सामान्य परिणाम निम्न उल्लेखित हैं:



1. पौधे की वृद्धि में कमी और विकासात्मक बौनापन: नमी की कमी के कारण सब्जियों की फसलें सामान्य रूप से विकसित नहीं हो पाती है। पानी की कमी पौधों की कोशिकाओं को बढ़ाने से रोकती है, जिससे विकास रूफ जाता है और पौधे का आकार छोटा हो जाता है। पौधों में फल लगने और फूल खिलने में भी विलम्ब हो सकती है।

2. पत्तियों और फूलों का मुरझाना: पौधों का मुरझाना नमी की कमी के सबसे स्पष्ट लक्षणों में से एक है। पानी की कमी से पौधों के लिए स्वास्थ्य रहना मुश्किल हो जाता है, और उनकी पत्तियाँ एवं फूल मुरझाकर गिर सकते हैं। यह एक सुरक्षात्मक तंत्र है, जिसका उपयोग पौधे वास्पोत्सर्जन के द्वारा होने वाले जल-हानि को कम करने के लिए करते हैं।

3. सब्जियों/फलों की खराब गुणवत्ता: नमी का तनाव काटे गये खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता पर गंभीर प्रभाव डाल सकता है, जिससे फलों या सब्जियों की गुणवत्ता खराब हो सकती है। सब्जियों में नमी की तनाव के कारण वृद्धि में कमी, असामान्य आकार और रंग में कमी आ सकती है। कम गुणवत्ता वाली उपज उन फसलों से प्राप्त हो सकती है, जिनकी बनावट और स्वाद दोनों ही बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गये हों।

4. पोषक तत्वों का कम अवशोषण और पोषक तत्वों में असंतुलन: पौधों की जड़ों के लिए पोषक तत्वों को अवशोषित करने के लिए पानी आवश्यक है। पोषक तत्वों की कमी नमी के तनाव के कारण हो सकती है। क्योंकि यह मिट्टी के महत्वपूर्ण पोषक तत्वों को सुगमता से अवशोषित नहीं होने देती। पोषक तत्वों के अवशोषण और वितरण में असामान्यताओं से फसलों की समग्र पोषण की स्थिति भी प्रभावित हो सकती है।

5. कीटों एवं बीमारियों की बढ़ती प्रवृत्ति: नमी की कमी से जूझ रहे पौधे कीटों एवं बीमारियों के संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। पानी की कमी से उनकी प्राकृतिक सुरक्षा कमजोर हो जाती है, इसलिए पौधे कीटों, बीमारियों, सूत्र कृमियों (नीमाटोड) एवं विषाणुओं के हमलों के प्रति ज्यादा संवेदनशील हो जाते हैं।

6. उत्पादन में कमी: उपरोक्त इन सभी प्रभावों का परिणाम सब्जी की फसलों की पैदावार में कमी के रूप में सामने आता है। नमी की कमी के कारण किसानों को कम विपणन योग्य उपज और वित्तीय नुकसान हो सकता है, जिसका उत्पादित खाद्य पदार्थ की मात्रा और गुणवत्ता दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

प्रभावी नमी तनाव प्रबंधन के लिए अनुकूल रणनीति:

सब्जी के फसलों में नमी के तनाव को प्रबंधित करने के लिए निम्न उल्लेखित उपायों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए:

सिंचाई जल प्रबंधन: फसल की जल आवश्यकता, मिट्टी की संरचना और जलवायु के अनुसार उपयुक्त सिंचाई के तकनीकों को लागू करना चाहिए। आधुनिक सिंचाई पद्धति जैसे ड्रिप सिंचाई तकनीक व स्प्रिंकलर सिंचाई पद्धति व्यावसायिक सब्जी उत्पादन के लिए सर्वोत्तम सिंचाई तकनीकें/पद्धतियाँ हैं।

मल्लिचंग: मिट्टी को नम रखने, वाष्पीकरण को कम करने तथा खरपतवार के विकास को नियंत्रित करने के लिए पौधों के चारों ओर जैविक मल्लिच (पुआल, भूसा, घास की कतरने, फसल अवशेष आदि) का उपयोग करना चाहिए।

मिट्टी का सुधार: कम्पोस्ट या अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद, नीम, सरसों, अंडी व करंज की खली जैसे कार्बनिक पदार्थों को डालकर मिट्टी की संरचना और जल धारण करने की क्षमता में सुधार करना चाहिए।

फसल-चक्र और अंतराल: पौधों के बीच पानी के लिए प्रतिस्पर्धा को न्यूनतम करने के लिए फसलों के चक्रीकरण और पौधे के बीच अंतराल (पौधों से पौधों एवं कतार से कतार के बीच फसलों के अनुसार अनुसंशित दूरी) की योजना बनाई जानी चाहिए, साथ ही फसल-चक्र अपनाना चाहिए।


निगरानी और समय निर्धारण: नमी मीटर (टेन्सयोमीटर) या अन्य दृश्य संकेतों का उपयोग करके, नियमित रूप से मिट्टी की नमी की जाँच करना चाहिए और फिर आवश्यकतानुसार अपनी सिंचाई की योजना को समायोजित करना चाहिए।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली: सब्जियों की गुणवत्तायुक्त अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए यह सिंचाई पद्धति आधुनिक एवं अत्यन्त उपयोगी हो सकती है। इस प्रणाली से पौधों की जड़ों तक सीधे पानी पहुँचाकर वाष्पीकरण के माध्यम से होने वाली जल-हानि को कम करती है।

निष्कर्ष

नमी का तनाव सब्जी की फसलों के उत्पादन में काफी बाधा डालता है, लेकिन सही प्रबंधन की तकनीके इसे कम करने में मदद कर सकती है। किसान और बागवान नमी के तनाव के कारणों और परिणामों को पहचानकर, उचित व आधुनिक सिंचाई रणनीतियों को अपनाकर, मल्लिचंग और मृदा संवर्धन जैसी पद्धतियों को अपनाकर मिट्टी में नमी की उपलब्धता को बेहतर बना सकते हैं और अपनी सब्जी की फसलों के स्वास्थ्य और उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। अंततः उत्पादन को अधिकतम करना और अच्छी गुणवत्तायुक्त फसल सुनिश्चित करना उपयुक्त नमी के तनाव का प्रबंधन पर बहुत हद तक निर्भर करता है।





पशु पोषण में औषधीय पौधों का महत्व: टिकाऊ एवं लाभकारी डेयरी विकास का आधार

डॉ. ज्ञान दीपक कुमार- पीएच.डी. (पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन),

डॉ. बृजेश सिंह- प्रोफेसर, पशुधन उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग

गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखंड

भारत में डेयरी क्षेत्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पोषण सुरक्षा एवं किसानों की आय का एक महत्वपूर्ण आधार है। वर्तमान समय में पशु आहार की बढ़ती लागत, गुणवत्तापूर्ण चारे की कमी तथा पशुओं के स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियाँ डेयरी विकास के समक्ष प्रमुख बाधाएँ हैं। इन परिस्थितियों में औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार एक प्रभावी, सुरक्षित एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरकर सामने आए हैं। ऐसे पौधों में विभिन्न पोषक तत्वों के साथ-साथ जैव सक्रिय यौगिक, प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट तथा प्रतिरक्षा-वर्धक तत्व पाए जाते हैं, जो पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता को बेहतर बनाने में सहायक हो सकते हैं।

सहजन (*Moringa oleifera*), जीवंती (*Leptadenia reticulata*), तुलसी (*Ocimum sanctum*), अश्वगंधा (*Withania somnifera*) तथा शतावरी (*Asparagus racemosus*) जैसे औषधीय पौधों का उपयोग पशु पोषण में बढ़ती रुचि का विषय है। विभिन्न अध्ययनों से संकेत मिलता है कि इन पौधों के संतुलित उपयोग से दुग्ध उत्पादन, दुग्ध गुणवत्ता, प्रतिरक्षा क्षमता, पाचन दक्षता तथा समग्र स्वास्थ्य स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

प्रस्तुत लेख में औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहारों के महत्व, उनकी पोषणीय एवं स्वास्थ्यवर्धक विशेषताओं, डेयरी पशुओं में उनकी उपयोगिता तथा देशी गायों में उनकी संभावनाओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

परिचय

भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में डेयरी क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। देश के करोड़ों किसान कृषि के साथ-साथ पशुपालन को आय के एक प्रमुख स्रोत के रूप में अपनाते हैं। दूध एवं दुग्ध उत्पादों की बढ़ती मांग को देखते हुए पशुओं की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य में निरंतर सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण पोषण उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है।

वर्तमान समय में पशुपालकों के समक्ष अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। हरे चारे की कमी, पशु आहार की बढ़ती लागत, पोषक तत्वों की अपर्याप्त उपलब्धता तथा बदलती जलवायु परिस्थितियाँ पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता को प्रभावित कर रही हैं। इन चुनौतियों के कारण दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता तथा रोग प्रतिरोधकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए ऐसे वैकल्पिक पोषण स्रोतों की आवश्यकता महसूस की जा रही है जो कम लागत में बेहतर परिणाम प्रदान कर सकें।

हाल के वर्षों में प्राकृतिक एवं औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहारों के उपयोग पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। उपभोक्ताओं में भी प्राकृतिक एवं सुरक्षित पशु उत्पादों की मांग बढ़ी है, जिसके कारण पशुपालन में रासायनिक उत्पादों के स्थान पर प्राकृतिक विकल्पों की



खोज तेज हुई है। औषधीय पौधे न केवल पोषण प्रदान करते हैं, बल्कि इनमें पाए जाने वाले जैव सक्रिय यौगिक पशुओं के स्वास्थ्य संरक्षण एवं उत्पादकता सुधार में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

सहजन (*Moringa oleifera*), जीवंती (*Leptadenia reticulata*), तुलसी (*Ocimum sanctum*), अश्वगंधा (*Withania somnifera*) तथा शतावरी (*Asparagus racemosus*) जैसे पौधे भारतीय परंपरा एवं आयुर्वेद में लंबे समय से उपयोग किए जाते रहे हैं। इन पौधों में प्रोटीन, विटामिन, खनिज तत्व, फ्लेवोनॉयड्स, फेनोलिक यौगिक तथा प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। यही कारण है कि आधुनिक पशु पोषण विज्ञान में इनकी उपयोगिता को लेकर व्यापक अनुसंधान किए जा रहे हैं।

औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहारों का उपयोग पशुओं की पाचन क्षमता, प्रतिरक्षा प्रणाली, स्वास्थ्य स्थिति एवं उत्पादन प्रदर्शन को प्रभावित कर सकता है। इसके अतिरिक्त ये पौधे स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने के कारण उत्पादन लागत को कम करने में भी सहायक हो सकते हैं। इसलिए टिकाऊ एवं लाभकारी डेयरी विकास की दिशा में इनका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

देशी गायों के संदर्भ में इन पौधों की उपयोगिता और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। देशी नस्लें अपनी अनुकूलन क्षमता, रोग प्रतिरोधकता एवं दीर्घ उत्पादन जीवन के लिए जानी जाती हैं। यदि इन्हें वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन के साथ औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार उपलब्ध कराया जाए तो उनकी उत्पादकता एवं स्वास्थ्य में और अधिक सुधार किया जा सकता है। यही कारण है कि वर्तमान समय में औषधीय पौधों को भविष्य के टिकाऊ डेयरी विकास का एक महत्वपूर्ण आधार माना जा रहा है।

पशु पोषण में औषधीय पौधों का महत्व

आज के समय में हर पशुपालक चाहता है कि उसके पशु स्वस्थ रहें, अधिक दूध दें और बीमारियों से बचे रहें। लेकिन पशु आहार की बढ़ती कीमत, हरे चारे की कमी तथा बदलते मौसम के कारण यह चुनौती दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। ऐसे में कई किसान प्राकृतिक एवं कम लागत वाले विकल्पों की तलाश कर रहे हैं। औषधीय पौधे इस दिशा में एक अच्छा विकल्प साबित हो सकते हैं।

सदियों से हमारे देश में तुलसी, अश्वगंधा, शतावरी, सहजन तथा जीवंती जैसे पौधों का उपयोग स्वास्थ्य सुधार के लिए किया जाता रहा है। अब इन पौधों का उपयोग पशुओं के आहार में भी बढ़ रहा है। इन पौधों में कई ऐसे पोषक तत्व पाए जाते हैं जो पशुओं को स्वस्थ रखने में सहायता करते हैं।

औषधीय पौधों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि वे केवल पोषण ही नहीं देते, बल्कि पशुओं की रोगों से लड़ने की क्षमता भी बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। इनके उपयोग से पाचन क्रिया बेहतर हो सकती है, जिससे पशु चारे का अधिक लाभ उठा पाते हैं। जब पशु चारा अच्छी तरह खाते और पचाते हैं, तो उनका स्वास्थ्य एवं उत्पादन दोनों बेहतर बने रहते हैं।

दुग्धारू पशुओं में दूध उत्पादन के दौरान शरीर पर अधिक दबाव पड़ता है। यदि पशुओं को पर्याप्त एवं गुणवत्तापूर्ण पोषण न मिले तो दूध उत्पादन, स्वास्थ्य तथा प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है। ऐसे समय में औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार पशुओं को अतिरिक्त पोषण एवं प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान कर सकते हैं।

इन पौधों का एक अन्य महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इन्हें किसान अपने खेतों, बगीचों अथवा मेड़ों पर आसानी से उगा सकते हैं। इससे पशुओं के लिए पौष्टिक पूरक आहार उपलब्ध होने के साथ-साथ बाजार से महंगे पूरक पदार्थ खरीदने की आवश्यकता भी कम हो सकती है। परिणामस्वरूप पशुपालन की लागत को नियंत्रित करने में सहायता मिल सकती है।

आज प्राकृतिक एवं टिकाऊ पशुपालन की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है। उपभोक्ता भी ऐसे दुग्ध उत्पादों को प्राथमिकता दे रहे हैं जो प्राकृतिक एवं सुरक्षित तरीके से प्राप्त किए गए हों। औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार इस दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

इस प्रकार औषधीय पौधे पशुओं के बेहतर स्वास्थ्य, संतुलित पोषण, अधिक उत्पादन तथा टिकाऊ डेयरी विकास के लिए एक उपयोगी संसाधन के रूप में उभर रहे हैं। यदि इनका उपयोग वैज्ञानिक तरीके से किया जाए तो ये किसानों की आय बढ़ाने तथा पशुपालन को अधिक लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

औषधीय पौधों में पाए जाने वाले प्रमुख पोषक एवं लाभकारी तत्व

औषधीय पौधों का महत्व केवल उनके प्राकृतिक स्रोत होने के कारण नहीं है, बल्कि इसलिए भी है क्योंकि इनमें अनेक आवश्यक पोषक तत्व एवं स्वास्थ्यवर्धक यौगिक पाए जाते हैं। सहजन, जीवंती, तुलसी, अश्वगंधा एवं शतावरी जैसे पौधों में प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन तथा जैव सक्रिय यौगिक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

इन पौधों में कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, जिंक एवं कॉपर जैसे खनिज तत्व पाए जाते हैं, जो हड्डियों की मजबूती, रक्त निर्माण तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त विटामिन A, C एवं E जैसे विटामिन शरीर की सामान्य



क्रियाओं को सुचारू रखने तथा विभिन्न प्रकार के तनावों से सुरक्षा प्रदान करने में सहायक होते हैं।

औषधीय पौधों में पाए जाने वाले प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट एवं जैव सक्रिय यौगिक शरीर में मुक्त कणों के दुष्प्रभाव को कम करने में सहायता करते हैं। साथ ही ये पौधे पाचन क्रिया एवं पोषक तत्वों के उपयोग को बेहतर बनाने में भी सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार औषधीय पौधे पशुओं के संतुलित पोषण, बेहतर स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।



चित्र 1. पशु पोषण में उपयोगी प्रमुख औषधीय पौधे।

डेयरी पशुओं के स्वास्थ्य पर औषधीय पौधों का प्रभाव

डेयरी पशुओं का स्वास्थ्य सीधे उनकी उत्पादकता, प्रजनन क्षमता तथा किसानों की आय को प्रभावित करता है। इसलिए पशुओं को स्वस्थ बनाए रखने के लिए संतुलित पोषण के साथ ऐसे पूरक आहारों की आवश्यकता होती है जो शरीर की प्राकृतिक रक्षा प्रणाली को मजबूत बना सकें। औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

सहजन, जीवंती, तुलसी, अश्वगंधा एवं शतावरी जैसे पौधों में अनेक जैव सक्रिय यौगिक, प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट तथा स्वास्थ्यवर्धक तत्व पाए जाते हैं। ये तत्व पशुओं की प्रतिरक्षा क्षमता को बेहतर बनाने, तनाव के प्रभाव को कम करने तथा सामान्य स्वास्थ्य स्थिति बनाए रखने में सहायक हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कई औषधीय पौधे पाचन क्रिया एवं पोषक तत्वों के उपयोग को भी बेहतर बनाने में सहायता करते हैं।



चित्र 2. गिर एवं थारपारकर – भारत की प्रमुख देशी दुग्धारू गाय नस्लें।

दुग्धारू पशुओं में प्रसव, दुग्ध उत्पादन एवं पर्यावरणीय तनाव जैसी परिस्थितियों के दौरान शरीर पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। ऐसे समय में संतुलित आहार के साथ औषधीय पौधों का उपयोग पशुओं के स्वास्थ्य संरक्षण एवं कार्यक्षमता बनाए रखने में योगदान दे सकता है। देशी गायों में भी इन पौधों का उपयोग स्वास्थ्य एवं उत्पादन प्रदर्शन को बेहतर बनाने की दृष्टि से उपयोगी माना जा रहा है।

अतः यह कहा जा सकता है कि औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार पशुओं की प्रतिरक्षा क्षमता, स्वास्थ्य संरक्षण तथा समग्र कार्यक्षमता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध गुणवत्ता पर औषधीय पौधों का प्रभाव

डेयरी पशुपालन का मुख्य उद्देश्य अधिक मात्रा में गुणवत्तापूर्ण दूध प्राप्त करना है। इसलिए ऐसे आहार एवं पूरक पदार्थों की आवश्यकता होती है जो पशुओं के स्वास्थ्य को बनाए रखते हुए उनकी उत्पादन क्षमता को भी बेहतर बना सकें। औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार इस दिशा में उपयोगी भूमिका निभा सकते हैं।

सहजन, जीवंती, शतावरी तथा अन्य औषधीय पौधों में पाए जाने वाले पोषक तत्व, खनिज एवं जैव सक्रिय यौगिक पशुओं की पोषण स्थिति को बेहतर बनाने में सहायता करते हैं। जब पशुओं को संतुलित एवं गुणवत्तापूर्ण पोषण प्राप्त होता है, तो उनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। विभिन्न अध्ययनों में यह संकेत मिला है कि औषधीय पौधों का संतुलित उपयोग दूध उत्पादन को बनाए रखने अथवा बढ़ाने में सहायक हो सकता है।

दूध की मात्रा के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता भी महत्वपूर्ण होती है। दूध में वसा, प्रोटीन, एसएनएफ (SNF) तथा कुल ठोस पदार्थ जैसे मानक उसकी गुणवत्ता निर्धारित करते हैं। औषधीय पौधों में मौजूद पोषक

तत्व एवं खनिज इन गुणवत्ता मानकों को बनाए रखने तथा सुधारने में सहायक हो सकते हैं।

देशी गायों में भी औषधीय पौधों का उपयोग स्वास्थ्य एवं उत्पादन दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा रहा है। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने के कारण ये पौधे कम लागत वाले पूरक आहार के रूप में किसानों के लिए उपयोगी विकल्प प्रदान करते हैं। इस प्रकार औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार दुग्ध उत्पादन, दुग्ध गुणवत्ता तथा टिकाऊ डेयरी विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।



चित्र 3. रेड सिन्धी एवं साहीवाल- उच्च दुग्ध उत्पादन क्षमता वाली देशी गाय नस्लों।

प्रमुख औषधीय पौधे एवं उनकी उपयोगिता

भारत में अनेक औषधीय पौधे उपलब्ध हैं जिनका उपयोग पशु पोषण एवं स्वास्थ्य सुधार के लिए किया जा सकता है। सहजन (*Moringa oleifera*) उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज तत्वों का अच्छा स्रोत है तथा पशुओं के पोषण एवं दुग्ध उत्पादन में सहायक माना जाता है। जीवंती (*Leptadenia reticulata*) एक महत्वपूर्ण भारतीय औषधीय पौधा है, जिसे स्वास्थ्यवर्धक एवं बलवर्धक गुणों के लिए जाना जाता है।

तुलसी (*Ocimum sanctum*) में जीवाणुरोधी, विषाणुरोधी एवं एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं, जो पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बेहतर बनाने में सहायक हो सकते हैं। अश्वगंधा (*Withania somnifera*) तनाव कम करने तथा शरीर की कार्यक्षमता बनाए रखने के

लिए प्रसिद्ध है, जबकि शतावरी (*Asparagus racemosus*) पोषण एवं उत्पादन क्षमता सुधारने वाले पौधों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

इन औषधीय पौधों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग पशुओं के स्वास्थ्य, पोषण एवं उत्पादन प्रदर्शन को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

औषधीय पौधों के उपयोग में सावधानी

यद्यपि औषधीय पौधे अनेक लाभ प्रदान करते हैं, फिर भी इनका उपयोग वैज्ञानिक सलाह एवं उचित मात्रा में ही किया जाना चाहिए। किसी भी पौधे का अत्यधिक उपयोग अपेक्षित लाभ के स्थान पर हानि भी पहुँचा सकता है। इसलिए पशुपालकों को पशु चिकित्सक अथवा पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह के अनुसार इनका उपयोग करना चाहिए।

इन औषधीय पौधों का संतुलित एवं वैज्ञानिक उपयोग पशुओं के स्वास्थ्य सुधार, बेहतर उत्पादन तथा टिकाऊ डेयरी विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

किसानों के लिए सुझाव

औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहारों का उपयोग तभी अधिक लाभकारी हो सकता है जब उनका प्रयोग वैज्ञानिक एवं संतुलित तरीके से किया जाए। पशुपालकों को यह समझना चाहिए कि औषधीय पौधे संतुलित आहार का विकल्प नहीं हैं, बल्कि वे पूरक आहार के रूप में कार्य करते हैं। इसलिए इनका उपयोग नियमित पशु आहार के साथ किया जाना चाहिए।

किसानों को चाहिए कि वे अपने क्षेत्र की जलवायु एवं उपलब्ध संसाधनों के अनुसार सहजन, तुलसी, जीवंती, अश्वगंधा एवं शतावरी जैसे उपयोगी पौधों की खेती करें। इन पौधों को खेत की मेड़ों, पशुशाला के आसपास अथवा खाली भूमि में आसानी से उगाया जा सकता है। इससे पशुओं के लिए पौष्टिक पूरक आहार उपलब्ध होने के साथ-साथ अतिरिक्त आय की संभावना भी बढ़ सकती है।

औषधीय पौधों की पत्तियों अथवा अन्य भागों का उपयोग करने से पहले उन्हें स्वच्छ एवं सुरक्षित तरीके से तैयार करना आवश्यक है। यदि पत्तियों का चूर्ण बनाया जाए तो उन्हें छाया में सुखाकर संग्रहित करना चाहिए ताकि उनके पोषक तत्व सुरक्षित रह सकें।

किसी भी नए पूरक आहार की तरह औषधीय पौधों को भी पशुओं के आहार में धीरे-धीरे शामिल करना चाहिए। अचानक अधिक मात्रा में उपयोग करने से पशु उसे स्वीकार नहीं कर सकते या पाचन संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए कम मात्रा से शुरुआत करके धीरे-धीरे मात्रा बढ़ाना अधिक उचित होता है।



दुग्धारू पशुओं, विशेषकर देशी गायों में, संतुलित आहार, स्वच्छ पेयजल, नियमित स्वास्थ्य परीक्षण तथा उचित प्रबंधन के साथ औषधीय पौधों का उपयोग अधिक प्रभावी परिणाम दे सकता है। केवल किसी एक पूरक आहार पर निर्भर रहने के बजाय समग्र प्रबंधन पर ध्यान देना आवश्यक है।

यदि किसान बड़े स्तर पर औषधीय पौधों का उपयोग करना चाहते हैं, तो उन्हें पशु चिकित्सक अथवा पशु पोषण विशेषज्ञ की सलाह अवश्य लेनी चाहिए। इससे पौधों की उचित मात्रा एवं उपयोग की सही विधि निर्धारित की जा सकती है।

प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक उपयोग न केवल पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादन को बेहतर बना सकता है, बल्कि पशुपालन को अधिक टिकाऊ एवं लाभकारी बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यही कारण है कि औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार भविष्य के डेयरी विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

निष्कर्ष

भारत में डेयरी क्षेत्र किसानों की आय, ग्रामीण रोजगार तथा पोषण सुरक्षा का एक महत्वपूर्ण आधार है। बढ़ती उत्पादन लागत, गुणवत्तापूर्ण चारे की कमी तथा पशुओं के स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों को देखते हुए प्राकृतिक एवं कम लागत वाले विकल्पों की आवश्यकता लगातार बढ़ रही है। औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार इस दिशा में एक प्रभावी एवं टिकाऊ समाधान प्रस्तुत करते हैं।

सहजन, जीवन्ती, तुलसी, अश्वगंधा एवं शतावरी जैसे औषधीय पौधे पोषक तत्वों, विटामिनों, खनिजों तथा प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट्स से भरपूर होते हैं। इनके संतुलित उपयोग से पशुओं के स्वास्थ्य, पाचन क्षमता, प्रतिरक्षा शक्ति एवं उत्पादन प्रदर्शन में सकारात्मक सुधार की संभावना रहती है। साथ ही ये पौधे स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने के कारण पशुपालन की लागत कम करने में भी सहायक हो सकते हैं।

देशी गायों के संदर्भ में इन पौधों का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। उचित पोषण एवं वैज्ञानिक प्रबंधन के साथ औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार देशी नस्लों की उत्पादकता एवं स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने में योगदान दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त इनका उपयोग टिकाऊ, पर्यावरण-अनुकूल एवं लाभकारी डेयरी विकास को भी बढ़ावा देता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि औषधीय पौधों पर आधारित पूरक आहार भविष्य के डेयरी पशुपालन के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प हैं। यदि इनका उपयोग वैज्ञानिक तरीके से किया जाए तो ये पशुओं के बेहतर स्वास्थ्य, अधिक उत्पादन तथा किसानों की आय वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।



कृषक मंच - जून 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 जून 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें:

